उदार जनतंत्र का सजग प्रहरी

मीडिया मैप

वर्ष 11 अंक 09
अक्टूबर 2026
मूल्य 50/-

महात्मा गांधी
सत्य, अहिंसा और आज का भारत

लाल बहादुर शास्त्री
सादगी, सेवा और स्वावलंबन की प्रेरणा

19th Asian Games

एशियाई खेल
उपलब्धियां, चुनौतियां और आगे की राह

आयुष
भारत की पारंपरिक चिकित्सा का बैश्विक बाजार की ओर सफर

कैलाश सत्यार्थी
हर बच्चे के अधिकार के लिए आज भी एक वैश्विक आवाज

: हम क्यों :



मीडिया मैप एक वैचारिक पत्रिका है। हमारे समाज के नीतिपरक और मूल्यनिष्ठ बिन्दु तथा इनसे जुड़ाव रखने वाले आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक मुद्दे इसकी विषयवस्तु है। मीडिया मैप की संपादकीय नीति उदारवादी, आधुनिक, प्रगतिशील व सर्व धर्म समभाव की भावना पर आधारित है।

मीडिया मैप हमारे बहुलतावादी समाज की विविधताओं से सुजित समस्त सोच, विचार, दृष्टिकोण, मूल्य और मान्यताओं को अपने में समाहित करने का एक प्रयास है। हमारा उद्देश्य वैज्ञानिक सोच द्वारा समाज से जुड़े मूल मुद्दों पर एक प्रबुद्ध जनमत विकसित करना है, जिससे देश में संकुचित मानसिकता और आपसी टकराव से ऊपर उठकर एक उत्तरदायी विचार-विमर्श का वातावरण तैयार हो सके।

समावेशी समाज | विचारों का विस्तार | मूल्य-आधारित संवाद | जागरूक नागरिकता | बेहतर भारत के लिए

सब्सक्राइब करें हमारा डिजिटल प्लेटफॉर्म

@mediamapnetwork

मीडिया मैप

उदार जनतंत्र का सजग प्रहरी

संपादकीय सलाहकार मंडल

प्रो. बलदेवराज गुप्त

के. बी. माथुर

डॉ. सलीम खान

डॉ. जॉन दयाल

प्रो. अविनाश सिंह

प्रधान संपादक

प्रदीप माथुर

संयुक्त संपादक - डॉ सतीश मिश्र

सहायक सम्पादक - जगदीश गौतम

तकनीकी संपादक - राजीव माथुर

प्रबंध संपादक -चन्द्र कुमार

विधि परामर्शदाता-संजय माथुर

पंजीकृत एवं संपादकीय कार्यालय 69 - ज्ञानखंड-4, इन्दिरापुरम, गाजियाबाद 201014 उत्तर प्रदेश

दूरभाष - 0120 - 3248535

जन संपर्क अधिकारी मो. 9910322682

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक, एवं संपादक प्रदीप माथुर द्वारा- वर्ल्ड विंडो डिजिटल प्रेस, नवयुग मार्केट, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश 201001 से मुद्रित एवं मीडिया मैप प्रकाशन - 69 - ज्ञानखंड-4, इन्दिरापुरम, गाजियाबाद 201014 उत्तर प्रदेश से प्रकाशित।

इस पत्रिका से जुड़े सभी पदाधिकारी, लेखकगण व अन्य सहयोगीगण समाज हित में बगैर किसी पारिश्रमिक या वेतन के स्वैच्छिक सेवा प्रदाता हैं।

इस अंक में प्रकाशित समस्त फीचर व समाचार के लेखकों के अपने स्वतंत्र विचार हैं, जिससे स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक का कोई उत्तरदायित्व नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद की स्थिति में क्षेत्राधिकार जिला एवं सत्र न्यायालय गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश होगा।

अनुक्रमणिका

- संपादकीय (2)
- समाचार सरिता (4)
- सत्ता, पूंजी और संस्थाओं के बीच अपवित्र संबंध (6)
- क्या मुख्य चुनाव आयुक्त को हटाया जा सकता है? (9)
- शेयर बाजार फिसला, करोड़ों की पूंजी साफ (13)
- पानी का संकट: आज की लापरवाही, कल की त्रासदी (16)
- मैं, मीडिया और महात्मा गांधी (19)
- महात्मा गांधी: आइंस्टीन की नज़र में (21)
- "नन्हे गौरैया से अजेय गरुड़ तक" लाल बहादुर शास्त्री (23)
- आयुष क्वालिटी मार्क: वैश्विक बाजार में भारतीय उत्पाद (28)
- एशियाई खेलों पर पर्दा गिरा (31)
- करुणा विश्व को युद्ध से शांति की ओर मोड़ सकती है (33)
- विकास की तेज चाल; आम आदमी की धीमी चाल (36)

RNI No: UPHIN/2016/68336 Website: www.mediamap.co.in Email: editor@mediamap.co.in

संपादकीय

गांधीवादी रास्ता ही एक मात्र समाधान

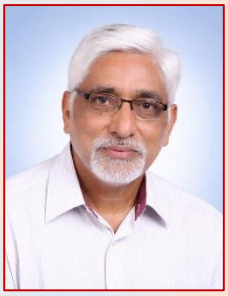

प्रो प्रदीप माथुर

महात्मा गांधी की जयंती ऐसे समय में मनाई जा रही है जब दुनिया शांति, सहिष्णुता और सद्भाव के उस रास्ते से भटकती दिखाई दे रही है, जिसका संदेश महात्मा ने अपने जीवन और संघर्ष से दिया था। आर्थिक तनाव, आपसी टकराव और युद्ध ने विश्व को असाधारण संकट में डाल दिया है। पश्चिम एशिया का युद्ध हजारों निर्दोष नागरिकों और बच्चों की जान ले चुका है। ऊर्जा संकट ने दुनिया भर में महंगाई का दबाव बढ़ाया है। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के आठ दशक बाद भी मानवता हिंसा और विनाश से मुक्त नहीं हो पाई है।

भारत भी इस बेचैनी से अछूता नहीं है। हमारे सामाजिक और राजनीतिक वातावरण में तनाव, अविश्वास, आरोप-प्रत्यारोप और कटुता बढ़ती जा रही है। सवाल केवल यह नहीं है कि देश किस तरह चलाया जा रहा है। अधिक गंभीर प्रश्न यह है कि जिन लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के माध्यम से सरकारें जनादेश प्राप्त करती हैं, उनकी विश्वसनीयता को लेकर भी जनता के एक हिस्से में संदेह क्यों पैदा हो रहा है।

इसी संदर्भ में चुनाव आयोग जैसी संवैधानिक संस्था की भूमिका सार्वजनिक बहस के केंद्र में आ गई है। आयोग पर लगाए जाने वाले हर आरोप को सही मानना जरूरी नहीं है। लेकिन यदि देश की एक महत्वपूर्ण संवैधानिक संस्था की निष्पक्षता और विश्वसनीयता पर व्यापक स्तर पर सवाल उठने लगें, तो यह हर लोकतंत्र-प्रेमी नागरिक के लिए चिंता का विषय होना चाहिए। लोकतांत्रिक संस्थाओं में जनता का विश्वास देश की सबसे मूल्यवान पूंजी है।

युवाओं की बेचैनी और भी चिंताजनक है युवाओं में बढ़ती बेचैनी। युवा भारत के विकास के सबसे बड़े लाभार्थी ही नहीं, उसके सबसे महत्वपूर्ण वाहक भी हैं। लेकिन युवाओं का एक बड़ा वर्ग आज गुस्से, अधीरता और निराशा से भरा दिखाई देता है। इसे केवल कानून-व्यवस्था या राजनीतिक विरोध का प्रश्न मानकर टाला नहीं जा सकता। इसके पीछे रोजगार, अवसर, असमानता और भविष्य को लेकर गहरी असुरक्षा भी है।

सार्वजनिक विमर्श का गिरता स्तर इस समस्या को और गंभीर बना रहा है। असहमति के स्थान पर गाली-गलौज, तर्क के स्थान पर व्यक्तिगत आक्षेप और आलोचना के स्थान पर अपमान बढ़ रहा है। राजनीतिक नेताओं और संस्थाओं के साथ-साथ समाज के बुजुर्गों और सार्वजनिक जीवन के सम्मानित व्यक्तियों के प्रति भी असम्मानजनक भाषा का इस्तेमाल सामान्य होता जा रहा है। यह हमारी उस सभ्यतागत परंपरा से गंभीर विचलन है, जिस पर हम संयम, सम्मान और सहिष्णुता का गर्व करते रहे हैं।

ऐसे समय में सवाल उठता है—इस स्थिति से निकलने का रास्ता क्या है?

उत्तर हमारे सामने ही है। वह रास्ता महात्मा गांधी ने दिखाया था।

गांधी का संदेश—स्वार्थ से ऊपर सेवा, हिंसा के स्थान पर अहिंसा, विरोधी के प्रति भी सम्मान और समाज के अंतिम व्यक्ति की चिंता—आज भी उतना ही प्रासंगिक है। ये केवल नैतिक उपदेश नहीं हैं; विभाजित समाज में विश्वास बहाल करने का व्यावहारिक आधार भी हैं।

विडंबना यह है कि जिस उपचार की हमें सबसे अधिक आवश्यकता है, वह हमारे पास पहले से मौजूद है। लेकिन हम उसे दूसरों के लिए तो उपयोगी मानते हैं, स्वयं पर लागू करने से बचते हैं।

गांधी की विरासत को जिस सहजता से कभी-कभी अपमानित किया जाता है, वह भी गंभीर चिंता का विषय है। लोकतंत्र में गांधी सहित किसी भी ऐतिहासिक व्यक्तित्व की आलोचना का अधिकार होना चाहिए। लेकिन तर्कपूर्ण आलोचना और हिंसा के महिमामंडन में स्पष्ट अंतर है।

किसी नेता के विचारों से असहमति लोकतांत्रिक अधिकार है। लेकिन उसके हत्यारे का महिमामंडन करना या राजनीतिक हिंसा को गौरव का रूप देना लोकतांत्रिक संस्कृति को मजबूत नहीं करता।

मीडिया मैप के माध्यम से हम राष्ट्रीय जीवन में इस विषय पर गंभीर बहस की मांग करते हैं। महात्मा गांधी, डॉ. भीमराव आंबेडकर, जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, सरदार वल्लभभाई पटेल और अनेक अन्य नेताओं ने स्वतंत्रता संग्राम तथा गणराज्य के निर्माण में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। उनके विचारों की आलोचना हो सकती है और होनी चाहिए—लेकिन तथ्य और तर्क के आधार पर। जानबूझकर नफरत फैलाना, हिंसा का महिमामंडन करना और उनके ऐतिहासिक योगदान को व्यवस्थित रूप से बदनाम करना स्वस्थ लोकतांत्रिक विमर्श नहीं है।

हम सत्ता पक्ष और विपक्ष, दोनों से आग्रह करते हैं कि वे इस प्रश्न पर राष्ट्रीय संवाद की शुरुआत करें। विशेष रूप से उन युवाओं से भी हमारी अपील है जो गांधी के नाम पर आंदोलन करते हैं: यदि हम न्याय और परिवर्तन की मांग गांधी के नाम पर करते हैं, तो हमें उनके संयम, अहिंसा और विरोधी के प्रति सम्मान के मूल्यों को भी अपनाना होगा।

भारत को अधिक नफरत और राजनीतिक कीचड़ की जरूरत नहीं है। उसे सार्वजनिक जीवन में शालीनता लौटाने की जरूरत है—असहमति हो, लेकिन दुश्मनी न हो; आलोचना हो, लेकिन अपमान न हो; राजनीतिक प्रतिस्पर्धा हो, लेकिन परस्पर सम्मान समाप्त न हो।

गांधी जयंती पर उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि उनकी प्रतिमा पर माला चढ़ाना या उनके उद्धरण दोहराना

नहीं है। सच्ची श्रद्धांजलि यह पूछना है कि क्या हम वास्तव में उन मूल्यों के अनुसार जी रहे हैं, जिनके लिए गांधी खड़े हुए थे?

यदि बदनामी की जगह तर्क, टकराव की जगह संवाद, अविश्वास की जगह सहयोग और कटुता की जगह सद्भाव हमारे सार्वजनिक जीवन का हिस्सा बन सके, तो यही गांधीवादी रास्ता होगा।

और आज के भारत को इससे बेहतर रास्ते की जरूरत शायद पहले कभी नहीं थी।



पश्चिमी बंगाल में ईसाइयों पर बढ़ता दबाव

पश्चिम बंगाल में ईसाई समुदाय से जुड़ी प्रार्थना सभाओं और धार्मिक गतिविधियों को लेकर विवाद अब छिटपुट घटनाओं तक सीमित नहीं रह गया है। एक रिपोर्ट के अनुसार, मई से सितंबर 2026 के बीच राज्य के 13 जिलों में ईसाइयों को निशाना बनाकर कम से कम 60 घटनाएँ दर्ज की गईं। इनमें अधिकांश मामले प्रार्थना सभाओं, घरों और चर्चों पर छापों से जुड़े हैं।

इंडिया हेट लैब (IHL) के अनुसार, 13 मई से 20 सितंबर के बीच हुई इन घटनाओं में 52 छापे और आठ ऐसे मामले शामिल थे जिनमें मारपीट, भीड़ हिंसा या तोड़फोड़ हुई। पाँच सार्वजनिक कार्यक्रमों में ईसाइयों के खिलाफ कथित घृणा-भाषण भी दर्ज किए गए। इन घटनाओं में धर्मांतरण के आरोप बार-बार सामने आए।

रिपोर्ट के मुताबिक, हिंदू जागरण मंच, विश्व हिंदू परिषद, बजरंग दल और कुछ अन्य हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों के सदस्यों की इन घटनाओं में भूमिका दर्ज की गई। दक्षिण 24 परगना और पश्चिम मेदिनीपुर में सबसे अधिक छापे हुए। कई जगह प्रार्थना सभाओं में पहुंचकर लोगों से उनकी धार्मिक पहचान पूछी गई और आधार कार्ड दिखाने को कहा गया।

महिलाओं को निशाना बनाए जाने के मामले भी सामने आए। कुछ घटनाओं में ईसाई महिलाओं से शंखा-पोला और सिंदूर जैसे पारंपरिक वैवाहिक प्रतीकों को हटाने के लिए कहा गया। कुछ मामलों में उन्हें सार्वजनिक रूप से अपमानित और परेशान किए जाने की बात रिपोर्ट में कही गई है।

कई घटनाएँ केवल पूछताछ या धमकी तक नहीं रुकीं। चर्चों में तोड़फोड़, धार्मिक सामग्री नष्ट करने और लोगों के साथ मारपीट के मामले भी दर्ज किए गए। रिपोर्ट में पुलिस की भूमिका को लेकर भी सवाल उठाए गए हैं। कुछ घटनाओं में पुलिस की मौजूदगी के बावजूद हिंसा हुई और बाद में ईसाई श्रद्धालुओं को ही हिरासत में लिए जाने का दावा किया गया है।

सोशल मीडिया ने भी इस घटनाक्रम को अलग आयाम दिया है। IHL के अनुसार, कई घटनाओं के वीडियो स्वयं संबंधित समूहों के सदस्यों ने फेसबुक और इंस्टाग्राम पर साझा किए या लाइव प्रसारित किए। सितंबर में घटनाओं की रफ्तार और तेज हुई—19 और 20 सितंबर के केवल 48 घंटों में पांच छापे दर्ज किए गए।

रिपोर्ट इन घटनाओं को एक बढ़ते हुए पैटर्न के रूप में देखती है और पुलिस तथा संस्थागत प्रतिक्रिया पर गंभीर सवाल उठाती है। हालांकि, ये सभी निष्कर्ष इंडिया हेट लैब द्वारा दर्ज और संकलित घटनाओं पर आधारित हैं।

जीवन की सबसे बड़ी समझ शायद यही है।
दूसरों के प्रति करुणा रखें, प्रेम बाँटें और स्नेह से जिएँ।

अमेरिकी टैरिफ के बावजूद भारत का स्टील बाजार मजबूत

क्या अमेरिकी बाजार पर हम इतने अड़े हुए हैं कि डोनाल्ड ट्रंप की खास किस्म की चीजें लगाने की धमकी के सामने झुक कर अपने व्यापक हितो को अन्य देशो से अपने ऐतिहसिक रिश्ते को डार्किनार कर दे? कम से कम स्टील एक्सपोर्ट के मामले में तो ये बात नहीं है। भारत का घरेलू बाजार इतना बड़ा है कि भारतीय इस्पात उद्योग अमेरिकी बाजार को मंजूरी दिए बिना भी आगे बढ़ सकता है। जिंदल स्टील के मॉडल और न्यून न्यून जिंदल ने कहा है कि अमेरिका द्वारा भारतीय स्टील को देश की स्टील इंडस्ट्री में सीमित रूप से सीमित रूप में पेश किया गया है। भारत में प्रति व्यक्ति स्टील मोटरसाइकिल अभी लगभग 107 किलोमीटर है, जबकि वैश्विक औसत 220 किलोमीटर से अधिक है। इस देश में स्टील की ग्रोथ बढ़ने की बड़ी संभावना है।

ये बात कोई और नहीं बाल्की जिंदल स्टील के नमूने और नवजात नवीन जिंदल ने कहा, उनके अनुसार, जब ट्राई 50 प्रतिशत था, तब भी भारत से अमेरिका को स्टील का कलाकार बहुत सीमित था। इसलिए नई टैरिफ का प्रभाव अपेक्षाकृत कम होगा।

जिंदल ने भारत में स्टील की मिट्टी की मांग और विकास की जमीन पर भी जोर दिया। उन्होंने कहा कि अगस्त 2026 के सरकारी आंकड़ों के अनुसार, अप्रैल-जुलाई के दौरान भारत में रेडी स्टील की कमाई के आधार पर 7.9 प्रतिशत का अनुपात 56 मिलियन टन हो गया। उनका कहना है, कम सामान वाली स्टील प्रोडक्शन व्यवस्था के भविष्य की जरूरत है।

ग्रेट ब्रिटेन के भीतर उठती आजादी की आवाजें

एक समय था जब ब्रिटिश साम्राज्य दुनिया भर में इतना विशाल था कि कहा जाता था कि इसमें सूर्य कभी अस्त नहीं होता। अब स्वतंत्रता पर आधारित विरोध के स्वरों के कारण अतीत के इस विशाल साम्राज्य का अवशेष भी खतरे में पड़ता दिख रहा है। यदि स्कॉटलैंड, वेल्स और उत्तरी आयरलैंड में स्वतंत्रता की मांग बढ़ती है तो एक समय का ग्रेट ब्रिटेन केवल इंग्लैंड तक सिमट कर रह जाएगा।

ब्रिटेन से स्कॉटलैंड, वेल्स और नॉर्दर्न आयरलैंड के नेता पहली बार एक मंच पर अलग करने की मांग करने आए। वेल्स की राजधानी कार्डिफ़ में हुई बैठक में उन्होंने कहा कि क्षेत्र के लोगों को अपने राजनीतिक भविष्य का निर्णय लोकतांत्रिक तरीके से करने का अधिकार है।

एंटरप्राइज़ ब्रिटेन से अधिक स्वामिता और भविष्य में स्वतंत्र राष्ट्र के समर्थक बने हैं। हालाँकि, जनमत संग्रह कब और किस प्रक्रिया से शुरू हो गया, इस पर बीच उनकी संख्या है। उनका कहना है कि सभी जिलों का इतिहास, पहचान और राजनीतिक आधार अलग-अलग हैं, इसलिए हर कोई अपने तरीके और समय के अनुसार भविष्य तय करेगा। बैठक में ब्रेक्सिट की आलोचना करते हुए यूरोपीय संघ के साथ संबंध मजबूत करने की बात कही गई। नेताओं ने ऊर्जा उत्पादन का बेहतर उपयोग किया और आम लोगों के लिए बिजली उत्पादन पर भी जोर दिया।

ब्रिटेन की राजनीति में कार्डिफ़ाइ बैठक में महत्वपूर्ण घटनाएँ मानी जा रही हैं। पहली बार रीयल्टी की आजादी के समर्थक एक साथ आए हैं, जिससे ब्रिटेन की एकता के भविष्य और की व्यवस्था पर बहस तेज हो सकती है।

भाजपा-कॉरपोरेट गठजोड़: सत्ता, पूंजी और संस्थाओं के बीच बढ़ते अपवित्र संबंध

डॉ. सतीश मिश्रा

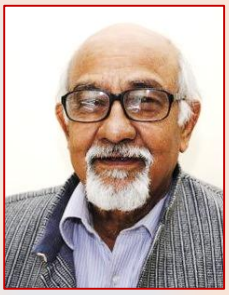

भारतीय लोकतंत्र में सत्ता और बड़े कारोबार के बीच संबंध कोई नई बात नहीं है। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में जिस तरह बड़े कॉरपोरेट घरानों और सत्तारूढ़ भारतीय जनता पार्टी के बीच निकटता को लेकर सवाल उठे हैं, उसने इस संबंध को महज राजनीतिक चंदे या कारोबारी सुविधा के सवाल से आगे बढ़ाकर लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्वतंत्रता, हितों के टकराव और राजनीतिक वित्तपोषण की पारदर्शिता का मुद्दा बना दिया है।



यहाँ यह स्पष्ट करना जरूरी है कि किसी पूर्व अधिकारी का सेवानिवृत्ति के बाद किसी निजी कंपनी में पद स्वीकार करना अपने आप में गैरकानूनी नहीं है। मौजूदा कानूनों में ऐसे मामलों पर प्रतिबंध सीमित हैं और कई 'कूलिंग ऑफ' प्रावधान विशेष रूप से सरकारी नियुक्तियों से संबंधित होते हैं। लेकिन जब नियामक, वरिष्ठ नौकरशाह या संवैधानिक संस्थाओं से जुड़े लोग सेवानिवृत्ति के तुरंत बाद उन कंपनियों से जुड़ते हैं जिनके क्षेत्र पर वे अपने कार्यकाल में प्रभाव डाल सकते थे, तो हितों के संभावित टकराव का प्रश्न अवश्य उठता है।

रिलायंस इंडस्ट्रीज से जुड़े कुछ उदाहरण इस बहस को समझने में मदद करते हैं। भारतीय स्टेट बैंक की पूर्व अध्यक्ष अरुंधति भट्टाचार्य 2018 में रिलायंस इंडस्ट्रीज के बोर्ड में स्वतंत्र निदेशक बनीं। रिलायंस की अपनी वेबसाइट भी इसकी पुष्टि करती है।

इसी तरह, पूर्व CBDT अध्यक्ष और केंद्रीय सतर्कता आयुक्त के. वी. चौधरी जून 2019 में CVC पद से सेवानिवृत्त हुए और चार महीने बाद रिलायंस इंडस्ट्रीज के बोर्ड में स्वतंत्र निदेशक नियुक्त हुए। इस नियुक्ति की उस समय व्यापक चर्चा हुई थी।

ऐसे उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा कि संबंधित अधिकारियों ने अपने सरकारी कार्यकाल में किसी कंपनी के पक्ष में काम किया था। लेकिन इससे एक महत्वपूर्ण संस्थागत प्रश्न जरूर पैदा होता है—क्या संवेदनशील सार्वजनिक पदों पर बैठे लोगों के लिए सेवानिवृत्ति के बाद निजी क्षेत्र में जाने के स्पष्ट और पर्याप्त नैतिक मानदंड होने चाहिए?

यही प्रश्न केवल रिलायंस तक सीमित नहीं है। भारत के बड़े कॉरपोरेट घरानों, विशेषकर अडानी समूह, का विस्तार भी राजनीतिक और सार्वजनिक बहस का विषय रहा है। हवाई अड्डों, बंदरगाहों, ऊर्जा, कोयला और अन्य क्षेत्रों में अडानी समूह के तेजी से विस्तार ने सरकार और बड़े कारोबार के संबंधों को लेकर आलोचनात्मक सवालों को जन्म दिया है।

इस संदर्भ में मीडिया क्षेत्र का उदाहरण विशेष महत्व रखता है।

एनडीटीवी लंबे समय तक भारत के प्रमुख स्वतंत्र समाचार संस्थानों में गिना जाता रहा। 2022 में अडानी समूह ने एनडीटीवी में नियंत्रणकारी हिस्सेदारी हासिल कर ली। संस्थापक-प्रमोटर प्रणय रॉय और राधिका रॉय ने अपनी बड़ी हिस्सेदारी अडानी समूह को बेच दी।

एनडीटीवी के संस्थापकों से जुड़े कर और नियामकीय मामलों को लेकर भी लंबे समय तक विवाद रहा। इन मामलों में अदालतों के फैसले और नियामकीय प्रक्रियाएं अलग-अलग चरणों में रही हैं। उदाहरण के लिए, जनवरी 2026 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने प्रणय रॉय और राधिका रॉय को जारी 2016 के आयकर नोटिसों को रद्द कर दिया और विभाग पर लागत भी लगाई।

इन घटनाओं को जोड़कर यह कहना कि किसी सरकारी एजेंसी ने जानबूझकर किसी मीडिया संस्थान को किसी विशेष कॉरपोरेट समूह के हाथों में पहुंचाया, एक गंभीर आरोप होगा और उसके लिए प्रत्यक्ष प्रमाण आवश्यक है। लेकिन यह पूछना लोकतांत्रिक रूप से पूरी तरह उचित है कि क्या सरकारी जांच एजेंसियों की कार्रवाई और बड़े कॉरपोरेट अधिग्रहणों के बीच पारदर्शिता और संस्थागत जवाबदेही पर्याप्त है?

इस प्रश्न का उत्तर किसी एक पार्टी, किसी एक कॉरपोरेट घराने या किसी एक घटना से नहीं मिलेगा। इसके लिए राजनीतिक चंदे, नियामकीय निर्णयों, सार्वजनिक संपत्तियों के आवंटन, सेवानिवृत्ति के बाद नियुक्तियों और मीडिया स्वामित्व—सभी क्षेत्रों में पारदर्शिता और स्वतंत्र निगरानी की जरूरत होगी।

राजनीतिक चंदा और कॉरपोरेट प्रभाव

इस पूरे विमर्श का सबसे ठोस हिस्सा राजनीतिक वित्तपोषण से जुड़ा है। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (ADR) की मार्च 2026 में जारी रिपोर्ट के अनुसार, वित्त वर्ष 2024-25 में राष्ट्रीय राजनीतिक दलों ने ₹20,000 से अधिक के कुल 11,343 चंदों से ₹6,648.56 करोड़ घोषित किए। इनमें भाजपा को ₹6,074.02 करोड़ और कांग्रेस को ₹517.39 करोड़ मिले।

और भी महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कुल घोषित चंदे में ₹6,128.79 करोड़—अर्थात 92.18 प्रतिशत—कॉरपोरेट और कारोबारी क्षेत्र से आए। अकेले भाजपा को कॉरपोरेट क्षेत्र से ₹5,717.17 करोड़ मिले, जो अन्य राष्ट्रीय दलों को मिले कुल कॉरपोरेट चंदे से 13 गुना से भी अधिक था।

इलेक्टोरल ट्रस्टों के माध्यम से भी अंतर स्पष्ट दिखाई देता है। ADR के अनुसार, 2024-25 में इलेक्टोरल ट्रस्टों ने राजनीतिक दलों को कुल ₹3,826.35 करोड़ वितरित किए, जिसमें भाजपा को ₹3,157.65 करोड़ यानी 82.52 प्रतिशत प्राप्त हुए।

ये आंकड़े अपने आप में किसी अवैध लेन-देन या quid pro quo का प्रमाण नहीं हैं। किसी राजनीतिक दल को बड़ी मात्रा में कॉरपोरेट चंदा मिलना यह सिद्ध नहीं करता कि उसके बदले किसी कंपनी को सरकारी लाभ दिया गया। लेकिन इतना जरूर स्पष्ट है कि भारतीय राजनीति में बड़े कारोबार और राजनीतिक सत्ता के बीच आर्थिक संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण हो चुके हैं।

यहीं से लोकतंत्र के लिए वास्तविक चुनौती शुरू होती है।

लोकतंत्र केवल चुनाव कराने का नाम नहीं है। लोकतंत्र की मजबूती इस बात पर भी निर्भर करती है कि संसद, न्यायपालिका, चुनाव आयोग, नियामक संस्थाएँ, जांच एजेंसियाँ और मीडिया कितनी स्वतंत्रता से काम कर सकते हैं। यदि सार्वजनिक पदों और निजी कॉरपोरेट हितों के बीच आने-जाने का रास्ता बहुत आसान हो जाए, तो भले ही कोई कानून न टूटा हो, जनता के मन में संस्थाओं की निष्पक्षता को लेकर संदेह पैदा हो सकता है।

इसी तरह राजनीतिक दलों को मिलने वाले विशाल कॉरपोरेट चंदे के मामले में भी पारदर्शिता आवश्यक है। सवाल केवल यह नहीं होना चाहिए कि चंदा कानूनी है या नहीं। सवाल यह भी होना चाहिए कि चंदे की व्यवस्था कितनी पारदर्शी है, दानदाताओं और सरकार के बीच संभावित हित-संबंधों की जानकारी जनता को कितनी मिलती है और सत्ता में बैठे दलों को मिलने वाले आर्थिक लाभ से राजनीतिक प्रतिस्पर्धा किस हद तक प्रभावित हो सकती है।

भारत को विकास के लिए बड़े उद्योगों और निजी निवेश की आवश्यकता है। सरकार और उद्योग के बीच सहयोग भी अर्थव्यवस्था के लिए जरूरी है। समस्या सहयोग में नहीं, बल्कि पारदर्शिता की कमी, संभावित हितों के टकराव और संस्थागत स्वतंत्रता पर उठने वाले संदेहों में है।

इसलिए भाजपा और कॉरपोरेट जगत के बीच संबंधों पर बहस को केवल 'गठजोड़' या 'अपवित्र गठबंधन' जैसे राजनीतिक नारों तक सीमित करना उचित नहीं होगा। असली मुद्दा इससे कहीं बड़ा है—क्या भारत में सत्ता, पूंजी और सार्वजनिक संस्थाओं के बीच पर्याप्त दूरी और पारदर्शिता बनी हुई है?

लोकतंत्र में जनता को केवल यह जानने का अधिकार नहीं है कि सत्ता में कौन है; उसे यह जानने का भी अधिकार है कि सत्ता किन आर्थिक शक्तियों से प्रभावित हो सकती है।

सपनों की राह

नीले आकाश की चादर पर
सूरज सुनहरी रेखा खींचता है,
पर्वत की शांत चोटियों पर
सुबह का उजियारा उतरता है।

ओस की बूँदें फूलों पर
मोती बनकर चमक रही हैं,
चिड़ियों की मीठी आवाजें
नई कहानी कह रही हैं।

पगडंडी चाहे पथरीली हो,
काँटे चाहे राह सजाएँ,
जो अपने कदम बढ़ाता जाए,
मंजिल उसके पास ही आए।

नदी सिखाती चलते रहना,
दीप सिखाता जलते रहना,
बादल बनकर बरसते रहना,
धरती का दुख हरते रहना।

आँधी आए, तूफान उठे,
हिम्मत फिर भी कम न हो,
मन में आशा का दीप जले,
जीवन कभी बेरंग न हो।

बीते कल की धूल झाड़कर
आज नया संसार सजाएँ,
छोटी-छोटी खुशियों से हम
जीवन का आँगन महकाएँ।

हर अँधेरी रात के पीछे
सूरज की किरण आती है,
सच्ची मेहनत और विश्वास से
हर मंजिल मिल जाती है।

क्या मुख्य चुनाव आयुक्त को हटाया जा सकता है?

डॉ. मुजफ्फर हुसैन गज़ाली



भारत में मुख्य चुनाव आयुक्त (CEC) का पद किसी सामान्य सरकारी अधिकारी का पद नहीं है। यह उस संवैधानिक संस्था का नेतृत्व करता है जिस पर देश में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने, मतदाता सूचियां तैयार करने तथा उनके संशोधन, चुनाव प्रक्रिया की निगरानी और मतदाताओं का विश्वास बनाए रखने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। संविधान के अनुच्छेद 324 के तहत चुनावों और मतदाता सूचियों पर अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण निर्वाचन आयोग को सौंपा गया है। यही कारण है कि मुख्य चुनाव आयुक्त के कामकाज को लेकर गंभीर सवाल उठते हैं तो मामला केवल किसी एक अधिकारी तक सीमित नहीं रहता। इससे सीधे निर्वाचन आयोग की संस्थागत विश्वसनीयता और चुनावी प्रक्रिया में जनता के भरोसे का प्रश्न जुड़ जाता है।



ऐसे में मौजूदा विवाद के बीच एक महत्वपूर्ण सवाल सामने है—क्या मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार को पद से हटाया जा सकता है?

इसका उत्तर राजनीतिक नारों में नहीं, बल्कि संविधान, कानून और स्थापित प्रक्रिया में छिपा है। ज्ञानेश कुमार ने 19 फरवरी 2025 को भारत के 26वें मुख्य चुनाव आयुक्त के रूप में पदभार संभाला था। इसके बाद मतदाता सूचियों के विशेष गहन पुनरीक्षण यानी Special Intensive Revision (SIR) को लेकर निर्वाचन आयोग की भूमिका पर व्यापक राजनीतिक और सार्वजनिक बहस शुरू हुई है।

CEC को हटाना सामान्य प्रशासनिक प्रक्रिया नहीं

मुख्य चुनाव आयुक्त को हटाने की प्रक्रिया किसी सामान्य सरकारी अधिकारी को हटाने से बिल्कुल अलग है। संविधान के अनुच्छेद 324(5) में स्पष्ट है कि मुख्य चुनाव आयुक्त को उसी तरीके और उन्हीं आधारों पर हटाया जा सकता है, जिस तरीके और आधार पर सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाया जाता है। इसी प्रावधान के तहत किसी अन्य चुनाव आयुक्त को हटाने के लिए मुख्य चुनाव आयुक्त की सिफारिश आवश्यक है।

इसका अर्थ है कि किसी राजनीतिक दल, संगठन या नागरिक समूह द्वारा इस्तीफे की मांग करना एक बात है और संवैधानिक प्रक्रिया के तहत CEC को हटाना दूसरी।

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के लिए

संविधान के अनुच्छेद 124(4) में सिद्ध कदाचार (proved misbehaviour) या अक्षमता (incapacity) का आधार निर्धारित है। CEC के मामले में भी यही संवैधानिक मानक लागू होता है। व्यवहार में इसके लिए संसद में विशेष प्रक्रिया अपनानी होगी। प्रस्ताव को निर्धारित संख्या में सांसदों का समर्थन चाहिए, उसके बाद आरोपों की जांच होती है और दोनों सदनों में आवश्यक विशेष बहुमत से प्रस्ताव पारित होने पर ही राष्ट्रपति हटाने का आदेश जारी कर सकते हैं।

अर्थात, किसी CEC को हटाने का संवैधानिक रास्ता मौजूद है, लेकिन उसे जानबूझकर अत्यंत कठिन बनाया गया है।

अन्य चुनाव आयुक्तों की स्थिति अलग

अन्य चुनाव आयुक्तों के मामले में संवैधानिक सुरक्षा की व्यवस्था अलग है। अनुच्छेद 324(5) के अनुसार CEC के अलावा किसी चुनाव आयुक्त को मुख्य चुनाव आयुक्त की सिफारिश के बिना हटाया नहीं जा सकता।

इस व्यवस्था का उद्देश्य निर्वाचन आयोग की संस्थागत स्वतंत्रता को सुरक्षित रखना है। यदि सरकार या सत्तारूढ़ दल राजनीतिक मतभेद के आधार पर चुनाव आयोग के प्रमुख को आसानी से हटा सके तो चुनावी संस्था की स्वतंत्रता प्रभावित हो सकती है।

लेकिन स्वतंत्रता का अर्थ जवाबदेही से मुक्ति नहीं हो सकता। यही मौजूदा विवाद का मूल प्रश्न है।

धारा 16 और कानूनी संरक्षण

2023 के Chief Election Commissioner and Other Election Commissioners Act की धारा 16 भी बहस का विषय बनी है। इसमें आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन के दौरान किए गए किसी कार्य, कथन या कार्रवाई के संबंध में CEC या चुनाव आयुक्त के विरुद्ध कुछ प्रकार की दीवानी अथवा आपराधिक कार्यवाही पर कानूनी सुरक्षा का प्रावधान है।

लेकिन इसे हर परिस्थिति में और जीवनभर लागू होने वाली पूर्ण कानूनी प्रतिरक्षा के रूप में समझना उचित नहीं होगा। इसकी भाषा आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन या उसके कथित निर्वहन से जुड़े कार्यों तक केंद्रित है। इस प्रावधान की संवैधानिक सीमा और व्याख्या अंततः न्यायपालिका के सामने ही स्पष्ट होगी।

SIR विवाद ने बढ़ाए सवाल

वर्तमान विवाद का सबसे महत्वपूर्ण केंद्र मतदाता सूचियों का Special Intensive Revision (SIR) है। इस प्रक्रिया की शुरुआत जून 2025 में बिहार से हुई और बाद में इसे देश के अन्य हिस्सों तक विस्तारित किया गया। मसौदा मतदाता सूचियों से बड़ी संख्या में नाम हटाए जाने को लेकर राजनीतिक दलों और नागरिक संगठनों ने गंभीर सवाल उठाए हैं।

यहाँ एक महत्वपूर्ण अंतर समझना जरूरी है। मसौदा सूची से किसी नाम का हटना स्थायी रूप से मतदान के अधिकार से वंचित होना नहीं है। दावे, आपत्तियाँ, सत्यापन और अपील की प्रक्रियाएँ मौजूद हैं और निर्वाचन आयोग ने छूटे हुए पात्र मतदाताओं के नाम बहाल करने के लिए विभिन्न उपाय भी घोषित किए हैं।

फिर भी सवाल महत्वपूर्ण है—यदि कोई पात्र मतदाता प्रशासनिक गलती के कारण सूची से बाहर हो जाए तो क्या उसे चुनाव से पहले सरल, समयबद्ध और प्रभावी उपाय उपलब्ध है?

यही SIR विवाद का सबसे गंभीर लोकतांत्रिक पक्ष है।

आयोग के भीतर मतभेद का सवाल

विवाद उस समय और गहरा हुआ जब मीडिया रिपोर्टों में निर्वाचन आयुक्तों सुखबीर सिंह संधू और विवेक जोशी द्वारा कुछ निर्णयों को लेकर आपत्तियाँ दर्ज किए जाने की बात सामने आई।

इंडियन एक्सप्रेस की एक रिपोर्ट के अनुसार, दस महीनों में कम-से-कम 14 औपचारिक आपत्तियाँ दर्ज की गई थीं। इनमें मतदाता पंजीकरण, Form 6

में बदलाव तथा मतदाता सूचनाओं के केंद्रीकरण से जुड़े मुद्दे शामिल बताए गए।

हालाँकि निर्वाचन आयोग ने इन व्याख्याओं पर आपत्ति जताई है। आयोग का कहना है कि SIR से संबंधित निर्णय सर्वसम्मति से लिए गए और आंतरिक विचार-विमर्श में मतभेद को संस्थागत विफलता के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। हाल में आयोग ने SIR से संबंधित अपने फैसलों को सर्वसम्मत बताया और मतदाताओं के लिए प्रक्रिया को आसान बनाने के कुछ कदम भी घोषित किए हैं। इसलिए असली सवाल यह नहीं है कि मतभेद हुए या नहीं। असली प्रश्न यह है कि निर्णय किस प्रक्रिया से लिए गए, उन्हें किस रूप में दर्ज किया गया और क्या कानून में निर्धारित सामूहिक निर्णय-प्रक्रिया का पालन हुआ।

ECINET और डेटा के केंद्रीकरण की बहस

तकनीक ने विवाद का एक नया आयाम जोड़ दिया है।

निर्वाचन आयोग ने 22 जनवरी 2026 को ECINET नामक एकीकृत डिजिटल प्लेटफॉर्म शुरू किया। आयोग के अनुसार यह प्लेटफॉर्म CEC ज्ञानेश कुमार और चुनाव आयुक्तों सुखबीर सिंह संधू तथा विवेक जोशी की परिकल्पना से विकसित हुआ और इसमें चुनाव से संबंधित अनेक डिजिटल सेवाओं को एक मंच पर लाया गया है।

विवाद डिजिटल तकनीक के इस्तेमाल को लेकर नहीं है। असली प्रश्न यह है कि मतदाता डेटा तक पहुंच और नियंत्रण किसके पास है तथा क्या तकनीकी व्यवस्था कानून द्वारा विभिन्न चुनाव अधिकारियों को दिए गए अधिकारों को प्रभावित करती है।

निर्वाचन आयोग का कहना है कि ECINET कानून के अनुरूप विकसित किया गया है और चुनावी अधिकारियों के वैधानिक अधिकार बरकरार हैं।

दूसरी ओर, आलोचकों ने डेटा के केंद्रीकरण और स्थानीय चुनाव अधिकारियों की भूमिका को लेकर सवाल उठाए हैं।

इसलिए मूल सिद्धांत स्पष्ट होना चाहिए—तकनीक को कानून द्वारा निर्धारित अधिकारों को लागू करने में मदद करनी चाहिए, उनका स्थान नहीं लेना चाहिए।

निर्वाचन आयोग ने हाल में ECINET की तकनीकी समीक्षा के लिए विशेषज्ञ समिति गठित करने और SIR से संबंधित प्रक्रियाओं में मतदाताओं की सुविधा बढ़ाने के कदमों की घोषणा की है।

अब सुप्रीम कोर्ट की भूमिका

विवाद अब केवल राजनीतिक बयानबाजी तक सीमित नहीं है।

सितंबर 2026 में दायर एक याचिका में CEC ज्ञानेश कुमार के कामकाज और SIR से संबंधित निर्णयों को चुनौती दी गई। याचिकाकर्ता ने आरोप लगाया कि कुछ निर्णय अन्य चुनाव आयुक्तों की सहमति के बिना लिए गए और आयोग की सामूहिक निर्णय-प्रक्रिया का पालन नहीं हुआ।

सुप्रीम कोर्ट ने इस याचिका पर सुनवाई के लिए सहमति दे दी है।

लेकिन यहाँ एक महत्वपूर्ण कानूनी सावधानी जरूरी है। याचिका में लगाए गए आरोप न्यायिक निष्कर्ष नहीं हैं। इसी तरह, किसी चुनाव आयुक्त द्वारा दर्ज की गई आपत्ति अपने-आप यह साबित नहीं करती कि CEC ने कानून का उल्लंघन किया है। इन प्रश्नों का फैसला उपलब्ध रिकॉर्ड, कानून और न्यायिक परीक्षण के आधार पर होगा।

सवाल केवल कितने नाम हटे, यह नहीं

मतदाता सूची का शुद्धिकरण आवश्यक है। मृत व्यक्तियों, डुप्लीकेट नामों या स्थायी रूप से स्थानांतरित लोगों के नाम हटाए जाने चाहिए।

लेकिन इसके साथ यह भी सुनिश्चित करना जरूरी है कि कोई पात्र नागरिक केवल प्रशासनिक भूल, नाम की वर्तनी, स्थान परिवर्तन, दस्तावेजी कठिनाई या तकनीकी समस्या के कारण मतदान के अधिकार से वंचित न हो।

यही कारण है कि SIR का वास्तविक परीक्षण केवल हटाए गए नामों की संख्या नहीं है। महत्वपूर्ण प्रश्न यह

है कि कितने पात्र मतदाता गलती से बाहर हुए और उन्हें कितनी आसानी तथा कितनी जल्दी प्रभावी राहत मिली।

एक मतदाता केवल चुनाव के समय दिखाई देने वाला नाम या आँकड़ा नहीं है। मतदाता सूची में उसका नाम लोकतांत्रिक भागीदारी का व्यावहारिक प्रवेश-द्वार है।

क्या राजनीतिक दबाव से CEC हटाया जा सकता है?

विपक्षी दलों और राजनीतिक संगठनों ने CEC के इस्तीफे और SIR रोकने की माँग की है। ये राजनीतिक माँगें हैं, न्यायिक निष्कर्ष नहीं।

राजनीतिक दबाव, प्रदर्शन या संसद में भाषण अपने-आप मुख्य चुनाव आयुक्त को पद से नहीं हटा सकते।

इस्तीफा स्वैच्छिक होता है।

संवैधानिक हटाया जाना एक निर्धारित कानूनी प्रक्रिया है।

दोनों में जमीन-आसमान का अंतर है।

CEC को हटाने की कठिन प्रक्रिया किसी तकनीकी खामी का परिणाम नहीं, बल्कि निर्वाचन आयोग की स्वतंत्रता की संवैधानिक सुरक्षा है। लेकिन इसी सुरक्षा के साथ संसद, न्यायपालिका और स्वयं निर्वाचन आयोग पर जवाबदेही की जिम्मेदारी भी बढ़ जाती है।

बड़ा सवाल: क्या केवल व्यक्ति बदलने से समस्या हल होगी?

शायद मौजूदा बहस का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं है कि ज्ञानेश कुमार को हटाया जा सकता है या नहीं।

बड़ा प्रश्न यह है कि क्या किसी एक व्यक्ति को हटाने से वे संस्थागत समस्याएँ समाप्त हो जाएँगी जिन पर आज बहस हो रही है?

संस्थाएँ व्यक्तियों से बड़ी होती हैं। एक CEC के बाद दूसरा CEC आता है। यदि समस्या निर्वाचन व्यवस्था की संरचना, निर्णय-प्रक्रिया, तकनीकी केंद्रीकरण या जवाबदेही के तंत्र में है, तो केवल पदाधिकारी बदलने से उसका समाधान नहीं होगा।

भारत को ऐसी निर्वाचन व्यवस्था की आवश्यकता है जिसमें निर्वाचन आयोग राजनीतिक दबाव से स्वतंत्र रहे, लेकिन साथ ही संविधान, संसद, न्यायपालिका और नागरिकों के प्रति जवाबदेह भी हो।

लोकतंत्र में तीन प्रकार के विश्वास अत्यंत महत्वपूर्ण हैं—मतदाता के अपने वोट पर विश्वास, मतदाता सूची की शुद्धता पर विश्वास और चुनाव कराने वाली संस्था पर विश्वास। इनमें से किसी एक पर गंभीर चोट पूरे चुनावी तंत्र की विश्वसनीयता को प्रभावित कर सकती है।

इसलिए SIR, ECINET और CEC के अधिकारों को लेकर चल रही बहस का असली महत्व किसी एक अधिकारी के पद से कहीं अधिक है। यह इस बात की परीक्षा भी है कि भारत की संवैधानिक संस्थाएँ चुनावी प्रशासन से जुड़े विवादों का समाधान कितनी पारदर्शिता, निष्पक्षता और प्रभावशीलता से कर सकती हैं।

अंततः लोकतंत्र में सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति CEC नहीं, मतदाता है—वह नागरिक जिसका नाम विधिवत मतदाता सूची में दर्ज हो, जो बिना बाधा मतदान कर सके और जिसे विश्वास हो कि उसके मत के साथ कानून के अनुसार व्यवहार होगा।

यही वह कसौटी है जिस पर SIR, ECINET और निर्वाचन आयोग से जुड़े मौजूदा विवाद को परखा जाना चाहिए।

सुविचार

"सच्ची सफलता वही है, जो अपने साथ दूसरों के जीवन में भी उम्मीद, खुशी और सकारात्मकता लेकर आए।"

शेयर बाजार फिसला, बढ़ी कीमतों ने की ₹39 लाख करोड़ की पूंजी साफ

शिवाजी सरकार



भारत की अर्थव्यवस्था इस समय एक अजीब विरोधाभास से गुजर रही है। एक ओर रोजमर्रा की जरूरतों की कीमतें लगातार बढ़ रही हैं और दूसरी ओर शेयर बाजार में निवेशकों की संपत्ति तेजी से घट रही है। खबरों के मुताबिक पकौड़े करीब 40 प्रतिशत और समोसे 33 प्रतिशत तक महंगे हुए हैं। ईंधन से लेकर पेंट तक की लागत बढ़ रही है। यानी आम आदमी एक साथ महंगाई और घटती वित्तीय संपत्ति—दोनों का दबाव झेल रहा है।



दूसरी ओर दलाल स्ट्रीट में सितंबर में भारी गिरावट दर्ज की गई। जनवरी से सितंबर 2026 के बीच भारतीय शेयर बाजार के बाजार पूंजीकरण में अनुमानतः ₹39 लाख करोड़ की कमी आई।

यह किसी एक दिन की भयावह गिरावट का परिणाम नहीं, बल्कि लगातार बिकवाली और कमजोर होते निवेश विश्वास का नतीजा है।

30 सितंबर तक निफ्टी-50 सितंबर में 6.1 प्रतिशत गिरकर 22,620.45 पर आ गया, जबकि सेंसेक्स 5.8 प्रतिशत गिरकर 72,480.29 पर बंद हुआ। मार्च के बाद दोनों सूचकांकों की यह सबसे बड़ी मासिक गिरावट रही। सितंबर में विदेशी निवेशकों ने भारतीय शेयरों से करीब 2.7 अरब डॉलर निकाले। इसके साथ 2026 में अब तक विदेशी निवेश की शुद्ध निकासी बढ़कर लगभग26.8अरब डॉलर हो गई।यह समझना जरूरी है कि ₹39 लाख करोड़ की कमी का अर्थ यह नहीं है कि अर्थव्यवस्था से इतनी नकदी बाहर चली गई। यह सूचीबद्ध कंपनियों के बाजार मूल्य और उनके शेयरधारकों की संपत्ति में हुई कमी को दर्शाता है। फिर भी इसका प्रभाव वास्तविक है। परिवारों के निवेश पोर्टफोलियो का मूल्य घटता है, निवेशकों का भरोसा कमजोर होता है और कंपनियों के लिए पूंजी जुटाना महंगा हो सकता है। नई परियोजनाओं में निवेश के फैसले भी प्रभावित हो सकते हैं। सवाल यह है कि जब देश में औद्योगिक गतिविधि अभी भी विस्तार के संकेत दे रही है, हालांकि विशेषज्ञ इसकी गति धीमी बताते हैं, तब शेयर बाजार इतनी बड़ी गिरावट का सामना क्यों कर रहा है और आम उपभोक्ता की जेब पर भी दबाव क्यों बढ़ रहा है?

तेल, महंगाई और रुपया मौजूदा दबावों का एक बड़ा हिस्सा बाहरी परिस्थितियों से पैदा हो रहा है। पश्चिम एशिया में बढ़ता तनाव और होर्मुज जलडमरूमध्य को लेकर अनिश्चितता ने कच्चे तेल की कीमतों को ऊपर धकेला है। सितंबर में ब्रेंट क्रूड

की कीमत करीब 14 प्रतिशत बढ़ी और महीने के अंत तक यह 100 डॉलर प्रति बैरल के आसपास या उससे ऊपर बनी रही।

भारत तेल का बड़ा आयातक है। इसलिए कच्चे तेल की महंगाई सीधे आयात बिल बढ़ाती है। इससे परिवहन और उत्पादन लागत बढ़ती है तथा रुपये पर दबाव पड़ता है।

1 अक्टूबर को डॉलर के मुकाबले रुपया कमजोर होकर ₹96.31 पर पहुंच गया। यह दो महीने से अधिक

समय में रुपये की सबसे बड़ी दैनिक गिरावट थी।

इसी दौरान अमेरिका की 10-वर्षीय ट्रेजरी यील्ड बढ़कर 5.34 प्रतिशत हो गई, जो 2002 के बाद का सबसे ऊंचा स्तर है।

अमेरिकी बॉन्ड पर बढ़ती ब्याज दरें डॉलर परिसंपत्तियों को अधिक आकर्षक बनाती हैं। इससे उभरते बाजारों के शेयरों का तुलनात्मक आकर्षण घटता है। परिणामस्वरूप विदेशी निवेशक भारतीय बाजारों से पैसा निकालकर अमेरिकी परिसंपत्तियों की ओर रुख कर सकते हैं।

आधिकारिक खुदरा महंगाई दर

4.82 प्रतिशत है, लेकिन कई वस्तुओं की कीमतों में इससे कहीं तेज वृद्धि देखने को मिली है। महंगा तेल डॉलर की मांग बढ़ाता है। कमजोर रुपया आयात को महंगा करता है और आयातित महंगाई माल ढुलाई, रसायन, उर्वरक, विनिर्माण तथा खाद्य वितरण जैसे क्षेत्रों में फैल सकती है। भले ही पेट्रोल-डीजल की खुदरा कीमतें तत्काल न बढ़ें, कंपनियों की आपूर्ति श्रृंखला में लागत बढ़ सकती है। बाद में इसका असर कीमतों, कंपनियों के मुनाफे या सरकारी वित्त पर दिखाई दे सकता है।

शेयर बाजार क्यों गिरा?

विदेशी निवेशकों की बिकवाली इस कहानी का केवल एक हिस्सा है। भारतीय शेयर बाजार के कई हिस्सों में मूल्यांकन पहले ही ऊंचे स्तर पर थे। ऐसे में वैश्विक ब्याज दरों में वृद्धि और भू-राजनीतिक जोखिम बढ़ने पर निवेशकों ने मुनाफावसूली शुरू की।

सितंबर की गिरावट से बाजार में

निगरानी वाले सभी 16 प्रमुख क्षेत्रों पर असर पड़ा। सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र 11.2 प्रतिशत गिरा। इसकी एक वजह अमेरिकी कंपनियों की मांग और आईटी खर्च को लेकर चिंता थी। मिड-कैप और स्मॉल-कैप शेयरों में भी गिरावट आई। इससे स्पष्ट है कि दबाव केवल कुछ बड़ी कंपनियों तक सीमित नहीं रहा।

घरेलू निवेशक और संस्थागत निवेशक विदेशी

बिकवाली के प्रभाव को कुछ हद तक रोक सकते हैं, लेकिन कमजोर आय, महंगे इनपुट और बदलती वैश्विक वित्तीय परिस्थितियों से शेयरों के मूल्यांकन को अनिश्चितकाल तक बचाना संभवनहीं है।

फिर भी शेयर की कीमत गिरने का अर्थ यह नहीं कि कंपनी विफल हो रही है। इसी तरह ऊंचा बाजार मूल्यांकन भविष्य में बेहतर रिटर्न की कोई गारंटी नहीं देता।

शेयर बाजार में गिरावट को अर्थव्यवस्था के पतन का सीधा प्रमाण मानना भी उचित नहीं होगा। विनिर्माण क्षेत्र की तस्वीर मिश्रित है। सितंबर में HSBC इंडिया मैन्युफैक्चरिंग PMI 55.1 पर रहा, जो विस्तार का संकेत तो है, लेकिन इसकी गति पर सवालभी उठाता है।

आम परिवार दोहरी मार झेलता है

आम परिवार के लिए यह पूरा संकट शेयर सूचकांकों की भाषा से कहीं अधिक वास्तविक है। एक ओर म्यूचुअल फंड, सीधे शेयर निवेश या सेवानिवृत्ति से जुड़े निवेशों का मूल्य घट सकता है; दूसरी ओर किराना, परिवहन और घरेलू सामान पर खर्च बढ़ता जाता है।

जिन परिवारों के पास शेयर बाजार में निवेश नहीं है, वे भी महंगाई से प्रभावित होते हैं। उनके पास बढ़ती कीमतों की भरपाई करने के लिए निवेश से मिलने

वाला अतिरिक्त लाभ भी नहीं होता।

पकौड़े की कीमत में 40 प्रतिशत और समोसे में 33 प्रतिशत की वृद्धि इस दबाव का प्रतीक है। पेट्रोल, पेंट, प्लास्टिक और अन्य वस्तुओं की बढ़ती लागत भी इसी कहानी का हिस्सा है। लेकिन मूल चिंता इससे बड़ी है—यदि मजदूरी और आय की वृद्धि जरूरी वस्तुओं की कीमतों के अनुरूप नहीं होती, तो लोगों की वास्तविक क्रय शक्ति घटती जाती है।

वित्त मंत्रालय की सितंबर की आर्थिक समीक्षा ने भी भू-राजनीतिक तनाव, ऊंचे कच्चे तेल के दाम और वैश्विक वित्तीय परिस्थितियों के कड़े होने से उत्पन्न जोखिमों को रेखांकित किया। अगस्त में खुदरा महंगाई 4.82 प्रतिशत रही, जबकि थोक महंगाई 9.92 प्रतिशत तक पहुंच गई। इसमें ईंधन और बिजली की कीमतों की भूमिका महत्वपूर्ण रही।

खुदरा और थोक महंगाई के बीच यह अंतर संकेत देता है कि उत्पादन और आपूर्ति श्रृंखला पर लागत का दबाव उपभोक्ता कीमतों में दिखाई देने की तुलना में तेजी से बढ़ सकता है।

नीति के सामने बड़ी चुनौती सरकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि शेयर बाजार में सुधार और बाहरी तेल झटके को व्यापक घरेलू आर्थिक मंदी में बदलने से कैसे रोका जाए। इसके लिए विश्वसनीय महंगाई प्रबंधन, स्थिर और अनुमानित कर एवं नियामकीय व्यवस्था, विवेकपूर्ण सरकारी खर्च तथा उत्पादकता बढ़ाने वाली नीतियां जरूरी हैं।

कमजोर वर्गों को सहायता देना भी आवश्यक है, लेकिन सब्सिडी की लागत और भविष्य के बजट पर पड़ने वाले बोझ के बीच संतुलन बनाना होगा।

भारत को आयातित ऊर्जा पर अपनी निर्भरता कम करनी होगी, लेकिन ऐसा करते हुए संक्रमण की लागत आम उपभोक्ता पर नहीं डाली जा सकती। बेहतर सार्वजनिक परिवहन, ऊर्जा दक्षता, ऊर्जा स्रोतों में विविधता और विश्वसनीय घरेलू उत्पादन इस दिशा में मदद कर सकते हैं।

रुपये की गिरावट, विदेशी निवेश की निकासी और तेल की बढ़ती कीमतें अलग-अलग घटनाएं नहीं हैं। ये एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। महंगे आयात से कंपनियों की लागत बढ़ सकती है। इससे मुनाफे पर दबाव पड़ सकता है। कमजोर मुनाफे की आशंका शेयर कीमतों को नीचे ला सकती है और निवेशकों का भरोसा कमजोर होने पर पूंजी की और निकासी हो सकती है।

₹39 लाख करोड़ का आंकड़ा बाजार मूल्य में हुई गिरावट का पैमाना बताता है, लेकिन इसकी वास्तविक आर्थिक कीमत इससे तय नहीं होती। असली सवाल यह है कि यह झटका केवल वित्तीय बाजार तक सीमित रहता है या निवेश, रोजगार, मजदूरी और उपभोग को भी प्रभावित करता है।

भारत को मौजूदा परिस्थितियों का ईमानदार आकलन करने की जरूरत है। ऐसी नीतियां जरूरी हैं जो लोगों की क्रय शक्ति की रक्षा करें, निवेश को बनाए रखें और यह सुनिश्चित करें कि वैश्विक उथल-पुथल का सबसे बड़ा बोझ आम नागरिक की जेब पर न पड़े।

नई सुबह

अंधेरों से घबराना नहीं,
राहों से हट जाना नहीं।
मुश्किल चाहे कितनी आए,
हिम्मत को झुकाना नहीं।

हर सुबह नई उम्मीद लिए,
जीवन को मुस्कुराना है।
गिरकर फिर से उठना ही,
जीवन का सच्चा अफसाना है।

मेहनत को अपना साथी बनाओ,
सपनों को सच कर दिखलाओ।
आज भले हो राह कठिन,
कल अपना आसमान सजाओ।

पानी का संकट: आज की लापरवाही, कल की त्रासदी

एस. मसूद हुसैन



भारत में पानी का संकट अब केवल कम बारिश या सूखे का सवाल नहीं रह गया है। बढ़ती आबादी, तेजी से फैलते शहर, कृषि की बढ़ती जरूरतें, उद्योग और ऊर्जा क्षेत्र की मांग तथा पर्यावरणीय दबाव ने पानी के सीमित संसाधनों के बंटवारे को एक गंभीर राष्ट्रीय चुनौती बना दिया है। देश में वर्षा भी पूरे साल समान रूप से नहीं होती और न ही जल संसाधन भौगोलिक रूप से समान रूप से उपलब्ध हैं। ऐसे में सवाल केवल यह नहीं है कि हमारे पास कितना पानी है, बल्कि यह भी है कि उपलब्ध पानी का बंटवारा किस आधार पर और किसके बीच किया जाए।



पानी के न्यायपूर्ण बंटवारे का अर्थ हर क्षेत्र या क्षेत्रक को बराबर मात्रा में पानी देना नहीं है। वास्तविक समानता का आधार जरूरत, प्राथमिकता, सामाजिक संवेदनशीलता, उपयोग की दक्षता और पानी की उपलब्धता होना चाहिए।

समानता का अर्थ बराबर हिस्सा नहीं

यदि पानी को सभी क्षेत्रों के बीच समान मात्रा में बांट दिया जाए तो भी परिणाम न्यायपूर्ण नहीं होगा। करोड़ों लोगों के लिए पेयजल और सार्वजनिक स्वास्थ्य की जरूरत की तुलना ऐसे औद्योगिक उपयोग से नहीं की जा सकती, जहां पानी के पुनर्चक्रण और पुन: उपयोग की संभावनाएं मौजूद हों। इसी तरह कृषि केवल पानी की सबसे बड़ी उपभोक्ता होने के कारण कम प्राथमिकता वाली गतिविधि नहीं हो सकती। वह खाद्य सुरक्षा और करोड़ों ग्रामीण परिवारों की आजीविका से जुड़ी है। इसलिए जल आवंटन में जरूरत, अनिवार्यता, आर्थिक महत्व, कमजोर वर्गों की स्थिति, दक्षता और पर्यावरणीय स्थिरता को साथ लेकर चलना होगा। पुराने समय में अधिक पानी इस्तेमाल करने वाले क्षेत्र को केवल ऐतिहासिक खपत के आधार पर भविष्य में भी अधिक पानी मिलता रहे, यह जरूरी नहीं है।

शुरुआत हो वैज्ञानिक जल आकलन से

न्यायपूर्ण जल वितरण की पहली शर्त है कि उपलब्ध पानी का विश्वसनीय आकलन किया जाए। केवल

औसत वार्षिक वर्षा या नदी के औसत प्रवाह के आधार पर योजनाएँ बनाना जोखिमपूर्ण हो सकता है, क्योंकि सूखे वर्षों में वास्तविक उपलब्धता काफी कम हो सकती है।

इस आकलन में सतही जल, भूजल और उसके पुनर्भरण, बाँधों में उपलब्ध भंडारण, पानी के वाष्पीकरण और परिवहन के दौरान होने वाले नुकसान, पर्यावरणीय जरूरतों तथा अंतरराज्यीय समझौतों को शामिल किया जाना चाहिए। बदलती आबादी, शहरीकरण, भूमि उपयोग, फसल चक्र और जल उपयोग की दक्षता के साथ जल-आकलन को समय-समय पर अपडेट करना भी जरूरी है।

कृषि, उद्योग और ऊर्जा के बीच संतुलन

पेयजल और सार्वजनिक स्वास्थ्य को सर्वोच्च सामाजिक प्राथमिकता मिलनी चाहिए। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि कृषि, उद्योग और ऊर्जा की वैध जरूरतों की अनदेखी कर दी जाए।

पानी का इस्तेमाल न्यायपूर्ण हो, उसकी बर्बादी रुके, गुणवत्ता सुरक्षित रहे और आज की जरूरतें आने वाली पीढ़ियों के जल अधिकारों को नुकसान न पहुंचाएं—यही भारत की दीर्घकालीन जल सुरक्षा का आधार होना चाहिए।

कृषि देश में पानी की सबसे बड़ी उपभोक्ता है। इसलिए लक्ष्य सिंचाई के लिए लगातार अधिक पानी उपलब्ध कराना नहीं, बल्कि प्रति इकाई पानी अधिक कृषि उत्पादन हासिल करना होना चाहिए। बेहतर सिंचाई तकनीक, फसल चयन, सिंचाई का उचित समय, नहरों में पानी की बर्बादी रोकना, सतही और भूजल का संयुक्त उपयोग तथा भूजल पुनर्भरण इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम हो सकते हैं।

औद्योगिक विकास के लिए पानी आवश्यक है, लेकिन उद्योगों को पानी के पुनर्चक्रण, पुन: उपयोग, अपशिष्ट जल उपचार और बेहतर जल दक्षता की दिशा में आगे बढ़ना होगा। ऊर्जा परियोजनाओं में भी पानी की उपलब्धता को पहले से ध्यान में रखना जरूरी है, खासकर उन क्षेत्रों में जहां जल संकट गंभीर है।

नदी घाटी बने जल प्रबंधन की इकाई

पानी प्रशासनिक सीमाओं को नहीं मानता। इसलिए नदियों और भूजल भंडारों को ध्यान में रखकर बेसिन स्तर पर जल प्रबंधन अधिक प्रभावी हो सकता है। एक ही योजना में सतही जल, भूजल, सिंचाई, पेयजल, उद्योग, ऊर्जा और पर्यावरण की जरूरतों को शामिल किया जाना चाहिए।

अंतरराज्यीय नदियों के मामले में विश्वसनीय आंकड़े, तकनीकी विशेषज्ञता और पारदर्शी निर्णय प्रक्रिया विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। इससे अलग-अलग परियोजनाओं पर होने वाले विवादों के बजाय पूरे नदी बेसिन के जल संतुलन को ध्यान में रखकर निर्णय लिए जा सकेंगे।

शहरों की पानी की जरूरत बनाम गांवों का अधिकार

तेजी से बढ़ते शहर अक्सर अपनी पानी की जरूरत पूरी करने के लिए दूर-दराज के जलाशयों, नदियों और भूजल स्रोतों पर निर्भर होते जा रहे हैं। शहरी जल सुरक्षा जरूरी है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि शहरों की जरूरत पूरी करने के लिए लगातार ग्रामीण क्षेत्रों से पानी खींचा जाता रहे।

शहरों को पहले अपनी जल व्यवस्था की दक्षता बढ़ानी होगी। पाइपलाइन लीकेज रोकना, मीटरिंग, वर्षाजल संचयन, स्थानीय जल स्रोतों और जलाशयों का संरक्षण, भूजल पुनर्भरण तथा उपचारित अपशिष्ट जल का बड़े पैमाने पर पुन: उपयोग इस निर्भरता को कम कर सकते हैं।

भूजल: छिपी हुई असमानता

भूजल के मामले में समस्या और जटिल है। कुएं और बोरवेल व्यक्तिगत नियंत्रण में हो सकते हैं, लेकिन जिस जलभृत से पानी निकाला जाता है वह सामूहिक संसाधन है। जलस्तर गिरने पर गहरे कुएं और अधिक पंपिंग क्षमता वाले लोग पानी हासिल करते रहते हैं, जबकि छोटे किसान और गरीब

परिवार सबसे पहले प्रभावित होते हैं।

इसलिए भूजल प्रबंधन को जलभृत स्तर पर वैज्ञानिक आकलन, निगरानी, संवेदनशील क्षेत्रों में नियमन, पुनर्भरण और सतही जल के साथ संयुक्त उपयोग पर आधारित करना होगा।

पर्यावरण और पानी की गुणवत्ता भी जरूरी

नदी को केवल मानव उपभोग के लिए पानी पहुंचाने वाली पाइपलाइन नहीं माना जा सकता। नदियां, आर्द्रभूमियां और बाढ़ क्षेत्र जैव विविधता के संरक्षण, भूजल पुनर्भरण और नीचे रहने वाली आबादी की आजीविका में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए पर्यावरणीय प्रवाह को भी जल नियोजन का हिस्सा बनाना होगा। इसी तरह पानी की उपलब्धता का अर्थ केवल उसकी मात्रा नहीं है। प्रदूषित पानी किसी काम का नहीं। औद्योगिक और अन्य अपशिष्टों का उपचार, पेयजल स्रोतों की सुरक्षा, पुनर्चक्रण और प्रदूषण फैलाने वालों से उसकी लागत वसूलना जल न्याय काहिस्सा होना चाहिए।

गरीबों की सुरक्षा के साथ जल मूल्य निर्धारण

पानी की कीमत तय करना उसके संरक्षण को प्रोत्साहित कर सकता है, लेकिन इसमें सामाजिक संवेदनशीलता जरूरी है। बहुत कम कीमत पानी की बर्बादी बढ़ा सकती है, जबकि अत्यधिक शुल्क गरीब परिवारों और छोटे किसानों पर बोझ डाल सकता है। इसलिए बुनियादी घरेलू जरूरत के लिए सस्ती दर और अधिक खपत के लिए क्रमशः बढ़ती दर का मॉडल अपनाया जा सकता है। उद्योग और वाणिज्यिक उपभोक्ताओं से अधिक लागत वसूलते हुए उन्हें पानी के पुनर्चक्रण के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

पारदर्शी आंकड़े और जवाबदेह व्यवस्था

न्यायपूर्ण जल आवंटन के लिए विश्वसनीय आंकड़े अनिवार्य हैं। वर्षा, नदियों के प्रवाह, जलाशयों, भूजल, पानी की गुणवत्ता, निकासी और विभिन्न क्षेत्रों की मांग से संबंधित आंकड़े सार्वजनिक और सुलभ होने चाहिए। रिमोट सेंसिंग, जीआईएस, स्वचालित निगरानी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी तकनीकें जल लेखांकन को अधिक प्रभावी बना सकती हैं।

प्रतिस्पर्धा नहीं, साझा जिम्मेदारी

भारत को ऐसा जल ढांचा चाहिए जो वैज्ञानिक आकलन, मानवीय जरूरतों की प्राथमिकता, कृषि-औद्योगिक आवश्यकताओं, पर्यावरणीय जरूरतों, जल दक्षता, सतही और भूजल के एकीकृत प्रबंधन, अपशिष्ट जल के पुन: उपयोग तथा पारदर्शी प्रशासन पर आधारित हो। बदलती परिस्थितियों के अनुसार जल आवंटन की समय-समय पर समीक्षा भी जरूरी है। अंततः पानी का न्यायपूर्ण बंटवारा किसी एक क्षेत्र को दूसरे पर प्राथमिकता देने का प्रश्न नहीं, बल्कि सीमित जल संसाधनों के भीतर सभी वैध जरूरतों के बीच संतुलन बनाने की चुनौती है। भारत को ऐसी व्यवस्था की जरूरत है जो प्रत्येक नागरिक को पर्याप्त और सुरक्षित पानी उपलब्ध कराए तथा साथ ही कृषि, उद्योग, ऊर्जा और पारिस्थितिकी की आवश्यकताओं की भी रक्षा करे।

उम्मीद की सुबह

पर्वत पर सूरज मुस्काया,
ओस ने मोती बिखराए।
चिड़ियों ने गीत सुनाया,
फूलों ने रंग सजाए।

राह कठिन हो, कदम बढ़ाएँ,
आँधी आए, दीप जलाएँ।
मन में विश्वास लिए चलें,
हर अँधेरे को रोशन करें।

मेहनत की खुशबू संग लेकर,
सपनों का आकाश छुएँ।
आज को सुंदर बनाकर,
कल की नई सुबह रचें।

जगदीश गौतम

महात्मा गांधी जयंती - 2 अक्टूबर

मैं, मीडिया और महात्मा गांधी

प्रो. प्रदीप माथुर

मेरे परिवार की आधुनिक और सामाजिक सुधारवादी सोच और कानपुर में कॉलेज के दिनों में मार्क्सवाद के संपर्क में आने की वजह से, मैं अपनी जवानी में महात्मा गांधी का बहुत बड़ा प्रशंसक नहीं था। लेकिन उनके विचारों और कामों से असहमत होने की मेरी वजहें संघ परिवार के उन कट्टर सदस्यों जैसी नहीं थीं, जो संकीर्ण सोच वाले और तर्कहीन होते हैं। इसके उलट, मुझे लगता था कि महात्मा गांधी उतने आधुनिक और प्रगतिशील नहीं थे और उस समय की हकीकत—यानी औद्योगिक क्रांति के बाद की दुनिया—के हिसाब से वे बहुत पुराने ख्यालों वाले थे। मुझे यह भी लगता था कि महात्मा गांधी में क्रांतिकारी जोश ज़्यादा होना चाहिए था और उन्हें नेताजी सुभाष चंद्र बोस जैसे नेताओं को साथ लेकर चलना चाहिए था। साथ ही, उन्हें हमारे आज़ादी की लड़ाई के योद्धाओं—जैसे रानी लक्ष्मीबाई, लाला हरदयाल, गदर पार्टी के सदस्य और अविभाजित बंगाल के युवा शहीद—के बलिदानों की ज़्यादा कद्र करनी चाहिए थी।

भले ही मुझे लगता था कि उनमें क्रांतिकारी जोश और होना चाहिए था, फिर भी मैं भारत की आज़ादी की लड़ाई में महात्मा गांधी के बड़े योगदान, उनके ऊँचे नैतिक चरित्र और निस्वार्थ बलिदान की बहुत तारीफ़ करता था। अपनी आपत्तियों के बावजूद, मेरा पक्का मानना था कि उनकी हत्या मानवता के ख़िलाफ़ सबसे बड़ा अपराध था और जिन लोगों ने इसे परोक्ष रूप से या चुप रहकर सही ठहराया, वे दुष्ट और घिनौने लोग थे।

अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद जब मैंने पत्रकारिता को अपना करियर बनाया, तो लीक से हटकर सोचने का नज़रिया और आलोचनात्मक सोच मेरी आदत बन गई। 1970 के दशक में, चंडीगढ़ के अंग्रेज़ी अख़बार 'द ट्रिब्यून' के पत्रकार के तौर पर पंजाब यूनिवर्सिटी से जुड़ी खबरें कवर करते हुए, मैं मैनेजमेंट विभाग के एक प्रोफ़ेसर के संपर्क में आया जो यूनिवर्सिटी कैंपस में गांधीवादी अध्ययन केंद्र चला रहे थे। अगर मुझे सही-सही याद है, तो वे कानपुर के रहने वाले थे और उनका नाम डॉ. त्रिपाठी था। एक दिन मैंने उनसे महात्मा गांधी के बारे में अपनी आपत्तियाँ ज़ाहिर कीं। उन्होंने धैर्यपूर्वक मेरी बात सुनी और कहा कि किसी नतीजे पर पहुँचने से पहले मुझे महात्मा गांधी और उनके दौर के बारे में और पढ़ना चाहिए। समाजशास्त्र का छात्र होने के नाते, संस्कृति, समाज और सामाजिक इतिहास जैसे विषयों में मेरी स्वाभाविक रुचि थी। अपने खाली समय में - जो टीवी और मोबाइल के आने से पहले बहुत ज़्यादा हुआ करता था - मैंने समकालीन इतिहास और उसे बनाने में महात्मा गांधी की भूमिका के बारे में पढ़ना और जानना शुरू किया। 'ट्रिब्यून' की अच्छी-खासी लाइब्रेरी और सरस्वती सरन कैफ़, जे.एम. शर्मा, जसवंत सिंह और एल.के. झा जैसे सीनियर साथियों ने, जिन्होंने आज़ादी की लड़ाई के आखिरी दिन देखे थे, इसमें मेरी मदद की। फिर मुझे महान सोशल साइंटिस्ट प्रोफ़ेसर एस.सी. दुबे और दूसरे लोगों से बातचीत करने का मौका भी मिला। जल्द ही मुझे यह एहसास होने लगा कि जिस माहौल में महात्मा गांधी काम कर रहे थे, उसमें शायद उनके पास ताकतवर ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ़ सबसे असरदार हथियार के तौर पर 'सविनय अवज्ञा'

(civil disobedience) अपनाने के अलावा कोई और रास्ता नहीं था।

हालाँकि, महात्मा गांधी की असली अहमियत मुझे 1989 में नई दिल्ली में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ मास कम्युनिकेशन (IIMC) से जुड़ने के बाद ही समझ में आई। दो दशक से ज़्यादा समय तक एक्टिव जर्नलिज़्म में रहने के बाद मुझे यह एहसास हुआ कि महात्मा गांधी ही असली और सच्चे मीडिया पर्सन थे, न कि मेरे जैसे लोग जो अपनी पोस्ट या अपनी की गई स्टोरीज़ की वजह से खुद को अच्छा जर्नलिस्ट समझते थे।

IIMC में मैंने पब्लिकेशन हेड और इसके सेमी-रिसर्च जर्नल 'कम्युनिकेटर' और 'संचार माध्यम' के एडिटर के तौर पर काम शुरू किया। इन दोनों जर्नल्स के लिए कंटेंट की तलाश में मास कम्युनिकेशन से जुड़ी किताबों और लेखों को पढ़ते हुए मुझे एहसास हुआ कि महात्मा गांधी शायद अब तक के सबसे महान मास कम्युनिकेटर थे। जिन लोगों से वे मिलते थे, बातचीत करते थे और जिनका नेतृत्व करते थे, उनकी सोच और मन की बात को वे हमेशा अच्छी तरह समझते थे। और इससे मुझे अपने स्कूल के दिनों की याद आ गई, जब मेरी हिंदी की किताब में सोहन लाल द्विवेदी की एक कविता थी - जिन्हें उनकी देशभक्ति वाली कविताओं के लिए 'राष्ट्र कवि' कहा जाता था - जिसमें कहा गया था कि करोड़ों लोग महात्मा गांधी के हर काम और हर कदम का पूरी निष्ठा से पालन करते थे।

इसमें कोई शक नहीं कि महात्मा गांधी में लोगों की सोच को समझने, उनके सोचने के नज़रिए को बेहतर बनाने और उन्हें सही रास्ते पर लाने - चाहे वह रास्ता कितना भी मुश्किल क्यों न हो - का अद्भुत हुनर था, और साथ ही वे सार्वजनिक नैतिकता के ऊँचे आदर्शों का भी पालन करते थे। इसी वजह से उनके समय के बड़े-बड़े और प्रभावशाली लोगों ने उनकी तारीफ़ की और उन्हें सम्मान के साथ याद किया जाता है। आज 100 से ज़्यादा देशों में उनकी मूर्तियाँ लगी हैं और विदेशों में 80 देशों में उनके जीवन और काम पर स्टडी सेंटर चलाए जा रहे हैं।

कुछ बुरे लोगों को छोड़कर, हमारे देश में हम महात्मा गांधी का सम्मान करते हैं और उन्हें पूजते हैं। लेकिन हम उन्हें शायद ही ठीक से समझ पाते हैं। हमारे नेता, सामाजिक कार्यकर्ता, अधिकारी और मीडिया के लोग आम लोगों की बेहतर सेवा कर पाएँगे अगर हम उनकी सोच को वैसे ही समझें जैसे महात्मा गांधी ने साफ़ तौर पर समझा था। यह अफ़सोस की बात है कि आधुनिक ट्रांसपोर्ट, शिक्षा, जन-जागरूकता और IT-आधारित मीडिया के इतने सारे साधनों के बावजूद, हम लोगों की नब्ज़ नहीं टटोल पा रहे हैं और उन्हें काम के लिए प्रेरित नहीं कर पा रहे हैं।

राष्ट्र निर्माण का। हम जिस "कनेक्ट" की तलाश करते हैं, वह छोटे और सांप्रदायिक मुद्दों पर किसी इमोशनल अपील में नहीं है। यह हमारे समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ की एक बड़ी और गहरी समझ पर आधारित है, जिसे गांधी ने समझा और देश को ब्रिटिश शासन से आज़ाद कराने की अपनी स्ट्रेटेजी का गाइडिंग प्रिंसिपल बनाया; और समाज की भलाई के लिए बड़े लक्ष्यों के प्रति लोगों को उदासीनता, बेपरवाही और निष्क्रियता से आज़ाद कराया।

हमारे राजनीतिक नेता, पब्लिक हस्तियाँ और बुद्धिजीवी जितनी जल्दी गांधीवाद के इस सार को अपना लें, हमारे दिशाहीन देश के लिए उतना ही अच्छा है।

सुविचार

"अब जबकि हमने पक्षियों की तरह आकाश में उड़ना और मछलियों की तरह पानी के भीतर तैरना सीख लिया है—फिर भी एक चीज़ सीखना बाकी है: धरती पर मनुष्य की तरह जीना।"

— जॉर्ज बर्नार्ड शॉ

महात्मा गांधी जो आइंस्टीन की नज़र में एक असाधारण मानव थे

डॉ. अनुभव माथुर

बीसवीं सदी के महानतम वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन महात्मा गांधी के एकमात्र प्रशंसक नहीं थे, बल्कि उनके विचारों और अहिंसा संघर्ष-पद्धति से गहराई से प्रभावित थे। दुनिया के विज्ञान में परमाणु की शक्ति को समझने वाले इस महान वैज्ञानिक ने गांधी में एक ऐसी नैतिक शक्ति का आकलन किया था, जो बिना हथियार और बिना किसी सिद्धांत के सत्ता के भी इतिहास की दिशा बदल सकता है।

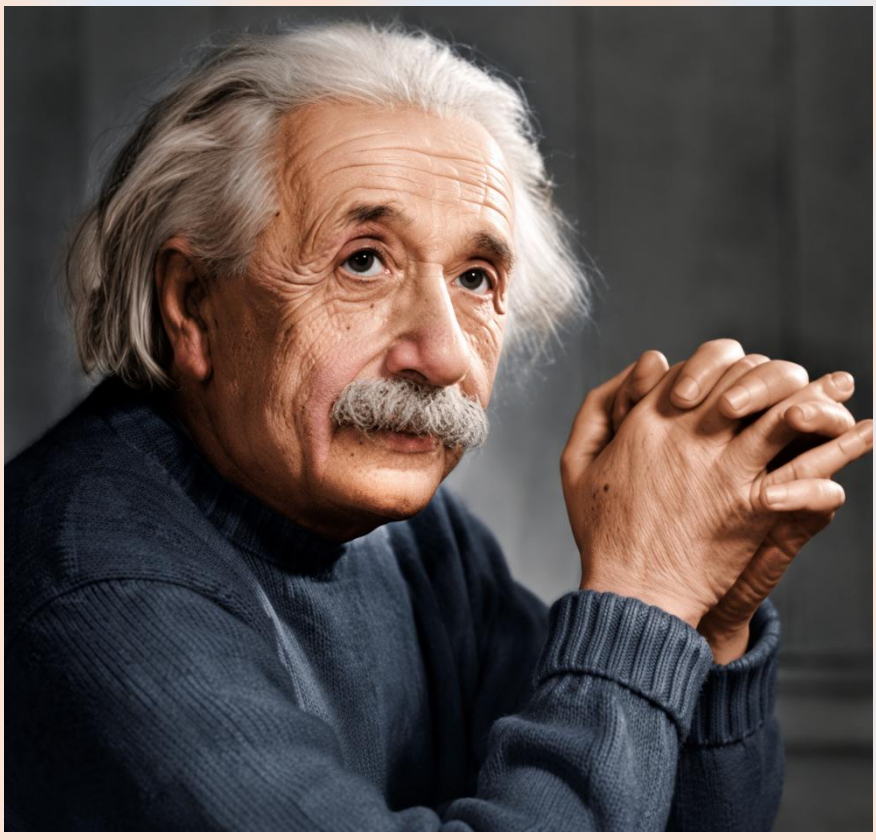

गांधी आइंस्टीन का कभी दर्शन नहीं हुआ। दोनों के बीच योग के माध्यम से संपर्क था। गांधी के 70वें जन्मदिवस के अवसर पर 1939 में आइंस्टीन ने उनके बारे में लिखा था, आज उन्हें गांधी जी को सबसे प्रसिद्ध राष्ट्रपतियों में से एक मिली है। आइंस्टीन ने गांधी को ऐसे राजनीतिक नेता के रूप में वर्णित किया, जिनकी समीक्षा सफलता किसी सरकारी पद, सैन्य शक्ति या बाहरी अधिकार पर नहीं, बल्कि उनके व्यक्तित्व की नैतिक शक्ति पर आधारित थी।

आइंस्टीन के गांधी ने एक शोषित देश की मुक्ति के संघर्ष के लिए एक बिल्कुल नया और मानवीय सिद्धांत विकसित किया था। गांधीजी ने अहिंसा के स्थान पर अहिंसा, प्रतिरोध और जनभागीदारी को संघर्ष का आधार बनाया। इस बात से आइंस्टीन इस बात से विशेष रूप से प्रभावित थे कि गांधी ने अत्यंत कठिन ढलान में भी हिंसा का सहारा नहीं लिया था।

"आने वाली पीढ़ियाँ शायद ही विश्वास कर सकेंगी कि ऐसा कोई व्यक्ति हाड-मांस के रूप में इस धरती पर कभी आया था।"

- आइ अल्बर्टांस्टीन, 1939

"सबसे अधिक शैतान राजनीतिक व्यक्ति"

बाद में गांधी जी के विचारों के बारे में आइंस्टीन ने कहा कि उनके समय के सभी राजनीतिक नेता "सबसे अधिक शैतान" थे। उन्होंने दुनिया से गांधी की भावना में काम करने का आह्वान किया- अपने उद्देश्य के लिए हिंसा का प्रयोग न किया जाए और जिन्हें हम बुरा मानते हैं, उन्हें सहयोग करने से मना कर दिया

जाए। यह विचार गांधीजी के असहयोग और अहिंसा प्रतिरोध के सिद्धांत से गहराई तक गया था।

आइंस्टीन के लिए गांधी की महानता केवल उनके राजनीतिक नेतृत्व में नहीं थी। उनका मानना था कि गांधी ने अपने व्यक्तिगत आचरण से लोगों की नैतिक शक्ति जगाया। उन्होंने लिखा कि गांधी का नैतिक प्रभाव साइंटिस्ट दुनिया की विचारधारा-समझने वाले लोगों को शायद अपने समय में दिखाई देगा तुलना में कहीं अधिक स्थिर सिद्ध होगा।

एक वैज्ञानिक की नजर से गांधी

गांधी और आइंस्टीन के दो बिल्कुल अलग महान व्यक्तित्व थे। एक आधुनिक भौतिक विज्ञान की दुनिया
में क्रांतिकारी परिवर्तन का प्रतीक था, तो दूसरी राजनीति और सामाजिक संघर्ष में अहिंसा का। फिर भी दोनों के बीच एक महत्वपूर्ण समानता थी—एक स्थापित धारणाओं को चुनौती देना और
मनुष्य की शक्ति पर विश्वास करने वाले व्यक्तित्व थे।

गांधी जी ने यह प्रदर्शित किया कि बिना एकजुट हुए भी एक विशाल जनसमुदाय को जोड़कर साम्राज्यवादी सत्ता को चुनौती दी जा सकती है। आइंस्टीन ने इस आशय में केवल भारत की स्वतंत्रता का संघर्ष नहीं, बल्कि मानव संस्कृति के लिए एक नैतिक संदेश देखा।

1948 में गांधी जी की हत्या के बाद भी आइंस्टीन का विश्वास नहीं बदला गया। उनका मानना था कि
हिंसा और शक्ति का प्रभाव क्षणिक हो सकता है, लेकिन उन नेताओं का प्रभाव अधिक स्थायी होता है जो अपने उदाहरण और नैतिक आचरण से समाज की शक्ति को जगाते हैं।

गांधी जी की प्रति आइंस्टीन की

श्रद्धांजलि आज भी बिल्कुल अर्थपूर्ण लगती है।

"आने वाली पीढ़ियां शायद ही विश्वास कर व्यक्तित्व होंगी..." - यह केवल एक महान वैज्ञानिक द्वारा दी गई अन्य महान को प्रशंसा नहीं थी; यह उस नैतिक विरासत की पहचान थी, जिसे गांधी जी ने पीछे छोड़ दिया था।

गांधी के विचारों की रोशनी

सत्य को जीवन का आधार
बनाओ,
अहिंसा से जग को राह
दिखाओ।
क्रोध नहीं, करुणा को
अपनाओ,
अपने भीतर दीप जलाओ।
सादा जीवन, ऊँचे विचार,
यही बने जीवन का श्रृंगार।
कमज़ोरों की शक्ति बनो,
हर पीड़ित के साथी बनो।
सत्याग्रह में साहस रखो,
अन्याय के आगे मत झुको।
स्वदेशी का मान बढ़ाओ,
श्रम से अपना देश सजाओ।
धर्म नहीं, मानवता महान,
हर इंसान का रखो सम्मान।
स्वच्छ मन और स्वच्छ समाज,
यही हो जीवन का राज।
सत्य, अहिंसा, प्रेम की राह,
यही गांधी की अमर चाह।
जीवन ऐसा कर्म बनाओ,
जग में अपना प्रकाश फैलाओ।

लाल बहादुर शास्त्री जन्मदिन - 2 अक्टूबर

"नन्हे गौरैया से अजेय गरुड़ तक" - इतिहास के झरोखों से शास्त्री जी

चन्द्र कुमार श्रीवास्तव



किसी प्रधानमंत्री की असली परीक्षा उसके प्रशंसकों की तालियों में नहीं होती। असली परीक्षा तब होती है, जब विपक्ष सवालों की बौछार करे, उसकी नीतियों पर उंगली उठाए और सदन के भीतर उसके निर्णयों को कठघरे में खड़ा कर दे।

लाल बहादुर शास्त्री इसी कसौटी पर खरे उतरने वाले प्रधानमंत्री थे।

आज उनकी स्मृति के साथ-- सादगी, ईमानदारी, विनम्रता और “जय जवान, जय किसान” स्वतः जुड़ जाता है। लेकिन इतिहास को केवल श्रद्धांजलि में बदल देना इतिहास के साथ न्याय नहीं होगा। शास्त्री जी की वास्तविक राजनीतिक यात्रा को समझने के लिए यह देखना भी जरूरी है कि उनकी आलोचना हुई थी—और कई बार बहुत तीखी आलोचना हुई थी।

फर्क सिर्फ इतना था कि उस दौर में राजनीतिक असहमति का निशाना मुख्यतः नीति और निर्णय होते थे, व्यक्ति और परिवार नहीं।

शास्त्री जी के सामने सवाल उठे। उनके फैसलों पर आपत्ति हुई। उनके पुराने सहयोगियों और राजनीतिक विरोधियों ने उन्हें घेरा। यहाँ तक कि उनके गुरु रहे आचार्य जे.बी. कृपलानी और आचार्य नरेंद्र देव जैसे दिग्गज भी उनसे असहमति व्यक्त करने से पीछे नहीं हटे।

और शास्त्री?

उन्होंने आलोचना को दुश्मनी नहीं बनाया।

यही उनकी राजनीति की पहली बड़ी पहचान थी।

जब ‘नन्हे गौरैया’

को सदन में चुनौती मिली--

संसद में शास्त्री जी को कभी-कभी उनके छोटे कद और सहज व्यक्तित्व के कारण मजाकिया अंदाज में “नन्हे गौरैया” कहा जाता था। वैसे बचपन में परिवार के लोग प्यार से उन्हें "नन्हें" बुलाते थे, और वे स्वयं गुरु नानक देव का प्रसिद्ध दोहा भी दोहराया करते --

नानक नन्हें ही रहो जैसे नन्हें दूब, बड़े बड़े बहि जात हैं, दूब खूब की खूब।

भावार्थ

हे नानक, 'दूब घास' की तरह छोटे ही बने रहो, क्यों कि बड़े बड़े पेड़ सूख जाते हैं, लेकिन छोटी सी दूब घास हमेशा भरी रहती है। यही शास्त्री जी के असली जीवन दर्शन को भी दर्शाता है।

जब आलोचनाओं के बीच शास्त्री ने संसद को बताया—लोकतंत्र में असहमति अपराध नहीं, नए विचारों की आज़ादी है ।

व्यक्तिगत कटुता से दूर, नीतियों पर तीखा संघर्ष; संसद में तर्क, राजनीति में मर्यादा और संकट की घड़ी में अदम्य संकल्प—लाल बहादुर शास्त्री की कहानी आज भी लोकतांत्रिक राजनीति के लिए एक आईना है।

लेकिन इतिहास में कई बार शरीर का आकार और

राजनीतिक व्यक्तित्व का आकार एक-दूसरे के विपरीत दिखाई देते हैं।

शास्त्री इसका जीवंत उदाहरण थे।

संसद में कम्युनिस्ट नेता हिरेन मुखर्जी ने उन पर आरोप लगाया कि उनका "दोहरा व्यक्तित्व" है और वे नेहरू की नीतियों से विचलित हो रहे हैं।

यह आरोप किसी सामान्य राजनीतिक बहस का हिस्सा हो सकता था। लेकिन शास्त्री जी ने इसका जवाब जिस तरीके से दिया, उसने बहस का स्तर ही बदल दिया।

उन्होंने पूछा—क्या लोकतंत्र में अपने पूर्ववर्ती नेता की हर नीति को ज्यों का त्यों दोहराना आवश्यक है? उनका तर्क था कि लोकतंत्र में नए विचारों और नई नीतियों के लिए जगह होती है। परिस्थितियां बदलती हैं तो नीतियां भी बदल सकती हैं। और फिर उन्होंने इतिहास का

सबसे प्रभावशाली उदाहरण सामने रखा—महात्मा गांधी।

जब गांधी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व संभाला, तो उन्होंने लोकमान्य तिलक, अरविंद घोष और लाला लाजपत राय से अलग राजनीतिक रास्ता अपनाया। दर्शन बदला, रणनीति बदली, कार्यक्रम बदले। तो क्या गांधी जी को इसलिए गलत कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने पूर्ववर्तियों से अलग रास्ता चुना?

शास्त्री का सवाल असल में हिरेन

मुखर्जी से कहीं बड़ा था। वह भारतीय लोकतंत्र के सामने रखा गया सवाल था—

क्या लोकतंत्र में नेतृत्व का अर्थ केवल विरासत को ढोना है, या परिस्थितियों के अनुसार नए रास्ते तलाशना भी है?

शास्त्री ने कम्युनिस्ट इतिहास से ही दिया जवाब

बहस को और आगे ले जाते हुए शास्त्री जी ने कम्युनिस्ट आंदोलन के इतिहास की ओर संकेत किया।

उन्होंने लेनिन का उदाहरण दिया—क्रांति के बाद परिस्थितियों ने जब आर्थिक नीति में परिवर्तन की मांग की, तो लेनिन ने नई आर्थिक नीति अपनाई।

फिर स्टालिन का दौर आया,

जिसकी नीतियां लेनिन के दौर से कई मामलों में अलग थीं।

बाद में निकिता ख्रुश्चेव ने स्टालिन की नीतियों की आलोचना की और सोवियत व्यवस्था में बदलाव की प्रक्रिया शुरू की।

शास्त्री जी का तर्क स्पष्ट था—

यदि परिस्थितियों के अनुसार नीति बदलना 'विचलन' है, तो दुनिया की बड़ी राजनीतिक विचारधाराओं के इतिहास में परिवर्तन की इतनी लंबी परंपरा को किस नाम से पुकारा जाएगा?
उनके लिए लोकतंत्र कोई बंद किताब नहीं था।

लोकतंत्र एक सतत संवाद था।

विचार आते हैं।

नीतियां बनती हैं।

उन पर बहस होती है।

परिस्थितियां बदलती हैं।

और फिर नीतियों की समीक्षा होती है। यही लोकतंत्र है।

शास्त्री का समाजवाद किताब में नहीं, खेत और कारखाने में था

बहस के अंत में शास्त्री जी ने अपनी सामाजिक-आर्थिक सोच का सार सामने रखा।

उनके लिए समाजवाद कोई जटिल वैचारिक शब्द नहीं था।

समाजवाद का अर्थ था—

किसान का जीवन बेहतर हो।

कारखाने में काम करने वाले

मजदूर का जीवन बेहतर हो।

महंगाई से परेशान मध्यवर्ग को राहत मिले।

और सबसे बढ़कर—

आम आदमी का जीवन बेहतर हो।

यानी विचारधारा की अंतिम कसौटी शास्त्री के लिए यह थी कि उसका लाभ उस व्यक्ति तक पहुंचे, जिसके नाम पर राजनीति की जाती है। यह सोच उनके पूरे राजनीतिक जीवन में दिखाई देती है।

इसीलिए उनके लिए कृषि केवल अर्थव्यवस्था का एक अध्याय नहीं थी। कृषि राष्ट्र की जीवनरेखा थी।

उन्होंने आर्थिक कठिनाइयों के बीच भी कृषि और सिंचाई की प्राथमिकता पर जोर दिया।

बाद में यही सोच उस ऐतिहासिक उद्घोष में बदल गई—

"जय जवान, जय किसान।"

विरोधी थे, लेकिन दुश्मन नहीं शास्त्री जी के समय की राजनीति को आज की राजनीतिक भाषा के चश्मे से देखना उचित नहीं होगा।

बाबू जगजीवन राम और मोरारजी देसाई जैसे नेताओं ने उनकी सरकार की नीतियों पर असहमति जताई। राजभाषा और अंग्रेजी के प्रयोग जैसे प्रश्नों पर भी तीखे मतभेद सामने आए। बीजू पटनायक, वीरेंद्र मिश्रा और टी.टी. कृष्णामाचारी जैसे नेता भी विभिन्न मुद्दों पर शास्त्री सरकार के आलोचक रहे।

लेकिन एक महत्वपूर्ण बात थी—

राजनीतिक विरोध को व्यक्तिगत शत्रुता में बदलना उस समय की सामान्य राजनीतिक भाषा नहीं बनी थी।

शास्त्री के आलोचक थे, लेकिन उनका परिवार निशाना नहीं था।

उनकी नीतियों पर हमला था, उनके चरित्र पर नहीं।

उनके निर्णयों पर बहस थी, उनकी निजी जिंदगी पर नहीं।

यही लोकतांत्रिक मर्यादा आज शास्त्री युग को अलग दृष्टि से देखने का कारण देती है।

लोहिया को जवाब:

"मैं बहुत विनम्र हूँ..."

शास्त्री जी की राजनीतिक शैली

को समझने के लिए डॉ. राममनोहर लोहिया से जुड़ा

प्रसंग भी कम दिलचस्प नहीं है।

लोहिया जैसे प्रखर विपक्षी नेता से उनका राजनीतिक मतभेद जगजाहिर था। एक अवसर पर लोहिया ने अपनी टिप्पणियों के संदर्भ में पुराने अच्छे दिनों की याद दिलाई।

शास्त्री जी ने जवाब दिया—

"आप बहुत सक्षम व्यक्ति हैं, लेकिन मैं आपसे सहमत नहीं हो

सकता—क्योंकि मैं बहुत विनम्र हूँ।"

संसदीय राजनीति में यह जवाब छोटा था, लेकिन संदेश बड़ा।

विरोधी को छोटा किए बिना

अपने मत पर अडिग रहना भी

एक राजनीतिक कला है।

शास्त्री जी इस कला के माहिर थे।

फिर आया 1965—और 'नन्हे गौरैया' की असली

परीक्षा हुई इतिहास कभी-कभी नेताओं को उनके

भाषणों से नहीं, संकटों से परखता है।

सितंबर 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध हुआ।

अब सवाल संसद के भीतर किसी नीति पर बहस का नहीं था।

अब सवाल देश की सुरक्षा का था।

जिस व्यक्ति को कभी उसके छोटे कद के कारण

"नन्हे गौरैया" कहा गया था, वही व्यक्ति युद्धकालीन भारत का नेतृत्व कर रहा था।

भारतीय सेना ने सीमा पार जाकर जवाबी कार्रवाई की।

देश ने पहली बार उस शास्त्री को देखा जो संसद में शांत स्वर में तर्क करता था, लेकिन राष्ट्रीय सुरक्षा के सवाल पर निर्णायक रुख अपनाने से पीछे नहीं हटता था।

और इसी दौर में—

"जय जवान, जय किसान"

एक नारे से बढ़कर राष्ट्रीय चेतना का हिस्सा बन गया।

एक तरफ सीमा पर जवान।

दूसरी तरफ खेत में किसान।

एक देश की रक्षा कर रहा था।

दूसरा देश का पेट भर रहा था।

शास्त्री ने दोनों को एक ही राष्ट्रीय संकल्प में जोड़ दिया।

आज शास्त्री को याद करने का अर्थ क्या है?

शास्त्री जी को केवल श्रद्धांजलि देने के लिए याद करना आसान है।

उनकी तस्वीर पर पुष्प चढ़ाना आसान है।

"जय जवान, जय किसान"

दोहराना भी आसान है। लेकिन
शास्त्री की राजनीति को समझना
कठिन है।
क्योंकि उनकी राजनीति हमें असहमति को स्वीकार करना सिखाती है। वह बताती है कि प्रधानमंत्री भी आलोचना से ऊपर नहीं होता।

वह बताती है कि विपक्षी होना शत्रु होना नहीं है।

वह बताती है कि नीति पर तीखा संघर्ष हो सकता है, लेकिन व्यक्ति की गरिमा बची रह सकती है।

और सबसे महत्वपूर्ण—

लोकतंत्र में अपने पूर्ववर्ती से अलग सोचना अपराध नहीं है।

शास्त्री की संसदीय विरासत का शायद यही सबसे महत्वपूर्ण संदेश है।

एक दौर था जब संसद में सवाल तलवार की तरह उठते थे, लेकिन जवाब तर्क से दिया जाता था।

एक दौर था जब विपक्ष सरकार को घेरता था, लेकिन राजनीतिक संवाद पूरी तरह व्यक्तिगत वैमनस्य में नहीं बदलता था।

एक दौर था जब नेता अपने विरोधी को हराने के लिए उसकी निजी जिंदगी नहीं, उसके तर्क को निशाना बनाता था। और उसी दौर में एक छोटा कद का आदमी भारतीय राजनीति के विशाल मंच पर खड़ा था।

उसके पास न कोई लंबा-चौड़ा व्यक्तित्व था, न आक्रामक भाषणबाजी।

उसके पास था—
तर्क।
विनम्रता।
सादगी।
दृढ़ता।
और लोकतंत्र में विश्वास।

संसद ने उसे कभी "नन्हे गौरैया" कहा।

इतिहास ने उसे लाल बहादुर शास्त्री के नाम से याद किया।

और 1965 ने दिखा दिया कि—

कद छोटा हो सकता है, नेतृत्व नहीं। आवाज़ धीमी हो सकती है, संकल्प नहीं।

व्यक्ति विनम्र हो सकता है, लेकिन राष्ट्रहित पर
उसका निर्णय अडिग हो सकता है।

यही वह यात्रा थी—नन्हे गौरैया से अजेय गरुड़ तक।

और शायद शास्त्री की सबसे बड़ी विरासत यही है कि उन्होंने साबित किया—लोकतंत्र में बड़ा नेता वह नहीं जो आलोचना से बच जाए; बड़ा नेता वह है जो आलोचना सुनकर भी अपनी नीति को तर्क से स्पष्ट करने का साहस रखे।

जिन्होंने राजनीतिक विरासत से जनसेवा की प्रेरणा ली

चंद्र कुमार श्रीवास्तव

आज की राजनीति में, जहाँ सत्ता के शोर, आरोपों की धूल और अवसरवाद की आँधी ने सार्वजनिक जीवन की मर्यादाओं को लगातार चुनौती दी है, वहाँ लाल बहादुर शास्त्री की राजनीतिक और चारित्रिक विरासत एक दुर्लभ कसौटी की तरह सामने खड़ी है। इस विरासत को केवल स्मृतियों में नहीं, बल्कि सार्वजनिक जीवन में आगे बढ़ाते हुए उनके दो सुपुत्र—श्री अनिल शास्त्री और श्री सुनील शास्त्री—आज भी अपनी अलग पहचान के साथ सक्रिय हैं।

दोनों ने राजनीति को परिवार की जागीर नहीं, बल्कि जनसेवा की जिम्मेदारी के रूप में देखा। सार्वजनिक जीवन में लंबे समय तक रहने के बावजूद उनकी व्यक्तिगत छवि पर गंभीर दाग का न होना अपने आप में उस राजनीतिक संस्कार का प्रमाण है, जिसकी जड़ें उनके पिता के जीवन में गहरी थीं। यह बात इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि आज राजनीति में किसी नेता की उपलब्धियों से अधिक उसके आचरण, आरोपों और निजी स्वार्थों पर बहस होती है।

अनिल शास्त्री और सुनील शास्त्री के व्यक्तित्व में



एक समान धागा दिखाई देता है—सादगी, शालीनता, संवाद और मर्यादा। वे भले ही अपने पिता की राजनीतिक ऊँचाइयों को दोहरा न पाए हों, लेकिन उनके लिए यह भी किसी उपलब्धि से कम नहीं कि दशकों के सार्वजनिक जीवन के बाद भी लोग उन्हें देखते हुए लाल बहादुर शास्त्री की उस छवि को याद करते हैं, जिसमें सत्ता से बड़ा चरित्र था और पद से बड़ी प्रतिष्ठा।

लाल बहादुर शास्त्री ने राजनीति को कभी निजी वैभव का माध्यम नहीं बनने दिया। उनके लिए सार्वजनिक पद जनता के प्रति उत्तरदायित्व था। उनके दोनों पुत्रों की सबसे बड़ी पूँजी शायद यही है कि उन्होंने अपने पिता के नाम को राजनीतिक ढाल नहीं, बल्कि नैतिक दायित्व की तरह स्वीकार किया।

आज जब राजनीति में चेहरे बहुत हैं, लेकिन चरित्र की कसौटी कठिन होती जा रही है, तब अनिल और सुनील शास्त्री यह सवाल छोड़ते हैं—क्या राजनीति में स्वच्छता अब भी संभव है?

उनका सार्वजनिक जीवन इस सवाल का एक शांत, लेकिन बेहद प्रभावशाली उत्तर है—हाँ, संभव है।

आयुष क्वालिटी मार्क: वैश्विक बाजार में भारतीय चिकित्सा प्रणाली का दख़ल

अनिल जौहरी



भारत के पारंपरिक चिकित्सा संस्थान को अंतरराष्ट्रीय मानक से जोड़ने की पहल, प्लास्टर और सेवाओं की संरचना को बढ़ाने पर जोर दिया गया भारत का पारंपरिक चिकित्सा संस्थान दुनिया के स्वास्थ्य बाजार में स्थापित होने की कोशिश अब एक नए चरण में पहुंच गया है। आयुष क्वालिटी मार्क ने इसी दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया है। इसका उद्देश्य आयुध डिपो और सेवाओं की गुणवत्ता और अंतर्राष्ट्रीय मानक के मानकों को दर्शाया गया है, जिससे उन्हें वैश्विक बाजार में अधिक आदर्श बनाना है।



आयुष भारत के पारंपरिक चिकित्सा ज्ञान का प्रतिनिधि है।

आयुर्वेद, यूनीक, सिद्ध, होम्योपैथी और योग के बीच स्वास्थ्य संबंधी जापानी दिग्गजों के बीच विश्व की रुचि बढ़ी है। हालाँकि योग ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक लोकप्रियता हासिल कर ली है, लेकिन आयुष के अन्य अंश और अध्ययनकर्ताओं के अध्ययन में अभी भी सीमित और बिखरी हुई है। भारत सरकार ने पिछले एक दशक में आयुष को प्रोटोटाइप के रूप में पेश करने और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बढ़ावा देने के लिए कई कदम उठाए हैं। वर्ष 2014 में अलग आयुष मंत्रालय का गठन किया गया। इसके बाद 2015 में योग पेशेवरों के प्रमाणन, 2017 में पारंपरिक के प्रमाणन और 2021 में आयुर्वेद प्रशिक्षण के प्रत्यायन जैसी व्यवस्थाएं विकसित हुईं। अब आयुष क्वालिटी मार्क को इस अभियान का अगला महत्वपूर्ण एपिसोड माना जा रहा है।

प्रधानमंत्री ने 2022 में रखी थीसिस अवधारणा दी

प्रधानमंत्री ने अप्रैल 2022 में गांधीनगर में पहली बार एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमें आयुष मार्क की आवश्यकता की बात कही गई थी, जो आयुष मित्रों और पेशेवरों को वैश्विक विचारधारा में शामिल करने में मदद कर सके। यह

विचार गंभीर था क्योंकि इसमें केवल औषधीय उत्पाद ही नहीं, बल्कि आयुष से जुड़ी विभिन्न सेवाओं को भी शामिल करने का सिद्धांत दिया गया था।

इसके बाद इस व्यवस्था का स्वरूप तय करने के लिए विशेषज्ञों के साथ लंबे समय तक विचार-विमर्श किया गया। अंततः जनवरी 2025 में आयुष मंत्रालय ने विशेषज्ञ का एक कार्यदल (वर्किंग ग्रुप) पेश किया। इस कार्यदल को वैश्विक मानक के आकार का आयुष्य गुणवत्ता मार्क की व्यवस्था विकसित करने की जिम्मेदारी दी गई।

19 दिसंबर 2025 को प्रधानमंत्री आयुष क्वालिटी मार्क की शुरुआत हुई।

किन रेमों को अपेक्षित मार्क?

कार्यदल ने आयुष क्षेत्र की कई जगहों को इस व्यवस्था में शामिल किया है। इनमें औषधीय उत्पाद, वनस्पति उत्पाद, औषधीय औषधि, उत्पाद परीक्षण प्रयोगशालाएं, अस्पताल, डे-केयर सेंटर, ऑल-वेस्ट, वेलनेस सेंटर और मेडिकल फार्मास्युटिकल फैसिलिटेटर्स शामिल हैं।

इसका आधार कोई नया भारतीय मानक नहीं है। इसके बजाय पहले से उपलब्ध और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रमाणित निवेशकों, प्रमाणपत्रों और प्रत्यायनों को आधार बनाया गया है।

कार्यदल ने वैश्विक मानक के अनुरूप को देखने के लिए कई विकल्प दिए हैं। इन दस्तावेजों में मान्यता प्राप्त वैश्विक मानक, अंतर्राष्ट्रीय स्तर के प्रमाणन और प्रत्यायन प्रणालियाँ, डब्ल्यूएचओ के मानक, आईएसओ मानक और अन्य मान्यता प्राप्त वैश्विक मानक शामिल हैं।

मसलन, पादप औषधियों के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के अच्छे विनिर्माण अभ्यास और औषधीय औषधीय के लिए अच्छे कृषि और क्षेत्र संग्रह अभ्यास के मानकों को आधार बनाया जा सकता है।

इसी तरह अंतर्राष्ट्रीय मानकीकरण संगठन (आईएसओ) के मानकीकृत मानक और वैश्विक प्रत्यायन सहयोग इंक (जीएसीआई) की अंतर्राष्ट्रीय प्रमाणन व्यवस्था में भी स्थान दिया गया है। क्षेत्रों में जैविक उत्पादन और खाद्य सुरक्षा जैसे अन्य मान्यताप्राप्त अंतर्राष्ट्रीय मानक की भी कमी हो सकती है।

उद्योग के लिए कई विकल्प

आयुष क्वालिटी मार्क की व्यवस्था में उद्योग को वैश्विक मानक के अनुरूप बनाने के लिए एक से अधिक विकल्प दिए गए हैं। आयुष आयुर्वेदिक औषधि प्रमाणन योजना के तहत प्राप्त प्रमाण पत्र, फार्मास्युटिकल प्रोडक्ट का प्रमाण पत्र (सीओपीपी) या आयुष मंत्रालय के लिए क्वालिटी काउंसिल ऑफ इंडिया (क्यूसीआई) द्वारा संचालित प्रमाण पत्र प्रमाणन योजना के तहत प्राप्त आयुष प्रीमियम मार्क को आधार बनाया जा सकता है।

बेसिक, वेलनेस सेंटर और मेडिकल स्टोर्स फैसिलिटर्स के लिए भी दो प्रमुख माध्यम उपलब्ध हैं। सबसे पहले, स्वास्थ्य सेवा प्रत्यायन के अंतर्गत ISQua बाह्य मूल्यांकन संघ (ISQua EEA) की व्यवस्था। दूसरे, जीएसीआई प्रणाली के अंतर्गत संबंधित आईएसओ मानक प्रमाणन।

स्वास्थ्य प्रमाण पत्र के लिए आईएसओ 9001 या आईएसओ 7101 और मेडिकल वैल्यूएशन के लिए आईएसओ 22525 मानक इसमें उपयोगी हो सकते हैं।

शिक्षा प्रशिक्षण और भी शामिल हैं

कार्यक्रम का विस्तार अब शिक्षा एवं प्रशिक्षण क्षेत्र तक भी किया जा रहा है। आयुष शिक्षा क्षेत्र में राष्ट्रीय भारतीय चिकित्सा प्रणाली आयोग (एनसीआईएसएम), योग प्रमाणन बोर्ड (वाईसीबी) और आयुर्वेद प्रशिक्षण प्रत्यायन बोर्ड (एटीएबी) पहले से ही विभिन्न गुणों के माध्यम से काम कर रहे हैं।

हालाँकि, आयुष क्वालिटी मार्क के लिए इन शेयरों

को अपने प्रमाणन और प्रत्यायन उत्पाद को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्य मानक के पैमाने पर बनाना होगा।

शिक्षा के क्षेत्र में वर्ल्ड फेडरेशन फॉर मेडिकल एजुकेशन (डब्ल्यूएफएमई) के माध्यम से ग्लोबल स्तर पर समकक्षता की शिक्षा व्यवस्था मौजूद है। प्रशिक्षण के लिए कार्यदल ने ISO 29993 को मानक के रूप में प्रस्तावित किया है। यह लर्निंग सर्विस प्रोवाइडर्स के लिए अंतर्राष्ट्रीय मानक है।

नया बेंचमार्क नहीं, अक्षर की समीक्षा

आयुष क्वालिटी मार्क की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है यह मूल रूप से निर्देश वाली व्यवस्था है। इसका उद्देश्य बाजार में पहले से उपलब्ध उत्पादों और सेवाओं को वैश्विक मानकों के आधार पर पहचानना है।

प्रत्येक इकाई के लिए नए और अलग-अलग बैच की व्यवस्था की पेशकश को चिह्नित नहीं किया गया है। इसके बजाय डेस्क समीक्षा प्रणाली के माध्यम से कुल मिलाकर प्रस्तुत साक्ष्य और दस्तावेज़ की समीक्षा की जाएगी। इससे यह तय हो गया कि संबंधित उत्पाद, संस्था या सेवा से पहले निर्धारित वैश्विक मानक का मिश्रण होता है या नहीं।

इस कार्यक्रम को आयुष एक्सपोर्ट प्रमोशन काउंसिल (आयुषएक्सिल) के तहत बनाया गया है। भविष्य में यह एक स्वतंत्र संस्था के माध्यम से संचालित करने की परिकल्पना है। कार्यक्रम से संबंधित विस्तृत जानकारी ayushqualitymark.in पर उपलब्ध है।

आयुष क्वालिटी मार्क से आशा है कि भारतीय पारंपरिक चिकित्सा प्लास्टर्स और सेवाओं की विश्वभर में। अंतरराष्ट्रीय मानक से जुड़ी यह व्यवस्था आयुष को केवल भारत की पारंपरिक चिकित्सा विरासत के रूप में नहीं, बल्कि वैश्विक स्वास्थ्य व्यवस्था के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में स्थापित करने में मदद मिल सकती है।

भगवान राम का नाम

क्यों लें उनका नाम,
जिन्हें नहीं मालूम शब्दों का सम्मान,
जो यूँ ही कर देते हैं
राम को बदनाम।

फिर भी करते हैं सरेआम ऐलान—
"हम तो हैं राम भक्त,
और लेते हैं धर्म का नाम।

क्या सचमुच राम हैं उनके साथ?
यह प्रश्न आज
हम सबको करना होगा।

राम थे मर्यादा के प्रतीक,
एक आदर्श और न्यायप्रिय राजा।
उन्होंने अपने नाम का
कोई मंदिर नहीं बनवाया,
बल्कि राजधर्म निभाया।

प्रजा को दिया
सुरक्षा, सुख और न्याय;
अन्याय पर विजय पाई,
और दीपावली बनी
लोक-आनंद का उत्सव।

किसी के प्रति
भेदभाव नहीं अपनाया—
यही था रामराज्य,
जिसका स्वप्न
महात्मा गाँधी ने भी देखा था।

मस्जिद तोड़ना
राम का काम नहीं हो सकता।
यह धर्म का नहीं,
सिरफिरी राजनीति का नतीजा है।

इसलिए पूछता हूँ—
क्यों लेते हो राम का नाम,
यदि उनके आदर्शों का
नहीं करते सम्मान?

राम को मत करो बदनाम;
उनके जीवन का संदेश अपनाओ,
और भारत में
सच्चे रामराज्य का स्वप्न साकार बनाओ।

अज्ञात

(रामनवमी 19 अक्टूबर)

एशियाई खेलों पर परदा गिरा, लेकिन कई सवाल छोड़ गया जापान का आयोजन

प्रभजोत सिंह

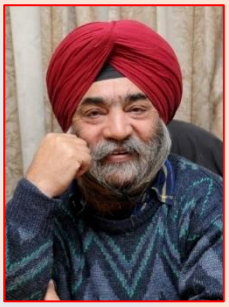

जापान के ऐची प्रीफेक्चर में 15 दिनों तक चले एशियाई खेलों का भव्य आयोजन आखिरकार संपन्न हो गया। एशिया की 45 सदस्य देशों के ओलंपिक परिषद से जुड़े 6,000 से अधिक खिलाड़ियों ने इन खेलों में हिस्सा लिया और खेल भावना के अनुरूप एक-दूसरे से श्रेष्ठ साबित होने की होड़ में पूरी ताकत झोंक दी। अब वे विदा हो चुके हैं—अगली मुलाकात चार वर्ष बाद दोहा में होगी।

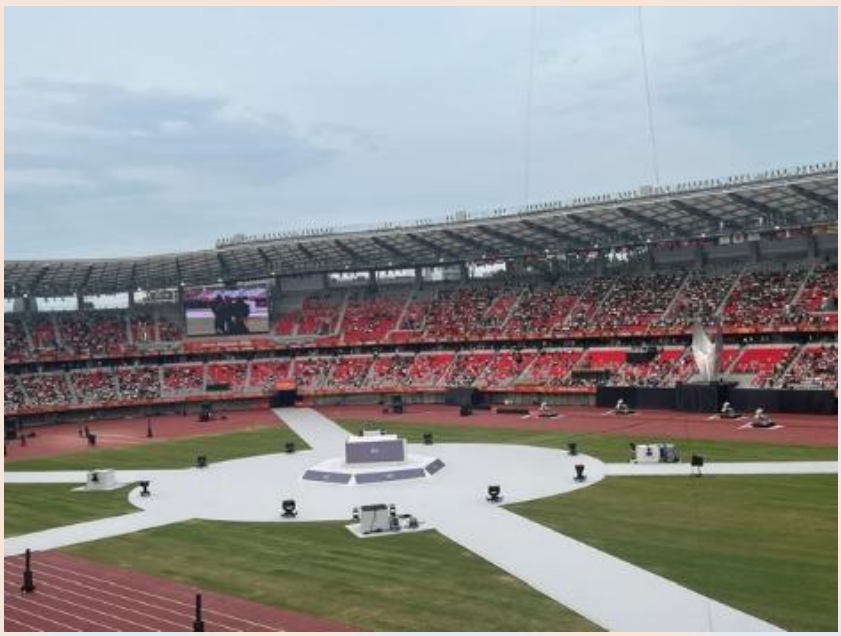

समापन समारोह ने परंपरागत रूप से खेलों पर परदा तो गिराया ही, साथ ही इन 15 दिनों में उभरे नए समीकरणों, नई दोस्तियों और नए चैंपियनों की भी झलक दी। हालांकि समारोह का एक पहलू आयोजकों के लिए निश्चित रूप से निराशाजनक रहा—स्टेडियम की बड़ी संख्या में खाली सीटें।

एशियाई खेलों का मूल संदेश था— 'एक एशिया'। लेकिन समापन समारोह में दर्शकों की कम मौजूदगी ने इस संदेश को कुछ कमजोर जरूर किया। स्टेडियम का लगभग तीन-चौथाई हिस्सा खाली नजर आया। टिकटों की उपलब्धता के बावजूद दर्शकों का अपेक्षित उत्साह नहीं दिखा। यहां तक कि मान्यता प्राप्त मीडिया के कई सदस्य भी स्टेडियम में मौजूद रहने के बजाय मीडिया सेंटर में बड़ी स्क्रीन पर समारोह देखना पसंद कर रहे थे।

आयोजकों के लिए यह स्थिति इसलिए भी चिंता का विषय हो सकती है क्योंकि आम तौर पर एशियाई खेलों जैसे बड़े आयोजन का उद्घाटन और समापन समारोह सबसे अधिक भीड़ खींचते हैं। ऐची खेलों में यह परंपरा टूटती दिखाई दी।

इसके पीछे कई कारण रहे होंगे। समारोह स्थल तक पहुंचने वाली सड़कों पर वाहनों की आवाजाही पर कड़े प्रतिबंध और सुरक्षा की व्यापक व्यवस्था ने जहां सुरक्षा सुनिश्चित की, वहीं आम दर्शकों के लिए समारोह तक पहुंचना कुछ हद तक कठिन भी बना दिया। मनोरंजन और सांस्कृतिक उत्सव की उम्मीद लेकर आने वाले लोगों के लिए इतनी कड़ी व्यवस्था उत्साह बढ़ाने के बजाय एक तरह की बाधा बन गई।

जापान की भौगोलिक परिस्थितियों को देखते हुए सुरक्षा संबंधी एक दिलचस्प दृश्य भी देखने को मिला। समारोह स्थल पर लगी बड़ी स्क्रीन भूकंप

की स्थिति में चिकित्सकीय आपातकाल से निपटने के निर्देश लगातार प्रदर्शित किए जा रहे थे। कुछ सप्ताह पहले जापान के कुछ हिस्सों में भूकंप के झटके महसूस किए गए थे। इसलिए आयोजकों की सावधानी स्वाभाविक थी।

चीन का दबदबा, भारत चौथे स्थान पर

इन खेलों का सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष पदक तालिका से सामने आया। प्रतियोगिता के दौरान 1,410 पदक दांव पर थे, लेकिन इनमें से लगभग एक-चौथाई, यानी 341 पदक, अकेले चीन ने जीत लिए। मेजबान जापान 261 पदकों के साथ दूसरे और दक्षिण कोरिया 150 पदकों के साथ तीसरे स्थान पर रहा।

स्वर्ण पदकों की तस्वीर भी एशिया में खेलों के बदलते शक्ति-संतुलन को स्पष्ट करती है। कुल 470 स्वर्ण पदकों में से 291 चीन, जापान और दक्षिण कोरिया के खाते में गए। भारत 85 स्वर्ण पदकों के साथ चौथे स्थान पर रहा। तीसरे स्थान पर रहे दक्षिण कोरिया के 150 स्वर्ण पदकों की तुलना में भारत के 85 स्वर्ण पदक एशियाई खेलों में शीर्ष खेल शक्तियों और भारत के बीच अभी भी मौजूद बड़े अंतर को रेखांकित करते हैं।

चीन ने 169 स्वर्ण, 89 रजत और 83 कांस्य सहित कुल 341 पदक जीते। जापान ने 95 रजत और 91 कांस्य के साथ कुल 261 पदक अपने नाम किए, जबकि दक्षिण कोरिया ने 43 रजत और 68 कांस्य के साथ 150 पदक हासिल किए। फिर भी इन खेलों का एक सकारात्मक पक्ष यह रहा कि 45 में से 40 भाग लेने वाले देश कम से कम एक पदक जीतने में सफल रहे। यह तथ्य एशिया में खेलों के व्यापक प्रसार और नए देशों के उभरने की संभावना को दर्शाता है।

चार साल बाद दोहा में मुलाकात

समापन समारोह में ओलंपिक काउंसिल ऑफ एशिया के अध्यक्ष ने खेलों की सफलता पर संतोष व्यक्त किया और खिलाड़ियों से चार वर्ष बाद कतर की राजधानी दोहा में फिर जुटने का आह्वान किया। समारोह की शुरुआत जापान के क्राउन प्रिंस, प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री के आगमन से हुई। इसके बाद जापान का ध्वजारोहण हुआ। विभिन्न देशों के ध्वजवाहकों और फिर खिलाड़ियों का स्टेडियम में प्रवेश समापन समारोह का सबसे पारंपरिक और भावनात्मक हिस्सा रहा।

बड़ी स्क्रीन पर पिछले 15 दिनों के यादगार क्षणों को वीडियो के माध्यम से दोहराया गया। मैदान पर एक-दूसरे से मुकाबला करने वाले खिलाड़ी इस अवसर पर प्रतिद्वंद्वी नहीं, बल्कि एक बड़े एशियाई परिवार के सदस्य दिखाई दिए।

इसके बाद अगली मेजबानी का प्रतीकात्मक हस्तांतरण हुआ और ऐची ने खेलों की मशाल दोहा को सौंप दी। दोहा की ओर से विशेष प्रस्तुति के साथ अगले एशियाई खेलों का संदेश दिया गया।

ऐची एशियाई खेल समाप्त हो गए हैं। इन खेलों ने जहां चीन, जापान और दक्षिण कोरिया की खेल शक्ति का प्रभावशाली प्रदर्शन किया, वहीं भारत सहित कई देशों के लिए यह सोचने का अवसर भी छोड़ा है कि एशियाई खेलों की दौड़ में वे आगे कैसे बढ़ सकते हैं।

खेलों का असली उद्देश्य केवल पदक जीतना नहीं, बल्कि देशों और लोगों को एक-दूसरे के करीब लाना भी है। ऐची ने इस भावना को काफी हद तक जीवित रखा। अब चुनौती दोहा की होगी—एशिया को खेलों के माध्यम से और अधिक करीब लाने की।

दैनिक पोस्ट

गलत लोग;
गलत करके भी
शर्मिंदा नहीं होते,
सही लोग केवल इल्ज़ाम से ही
टूट जाते हैं।

करुणा विश्व को युद्ध से शांति की ओर मोड़ सकती है

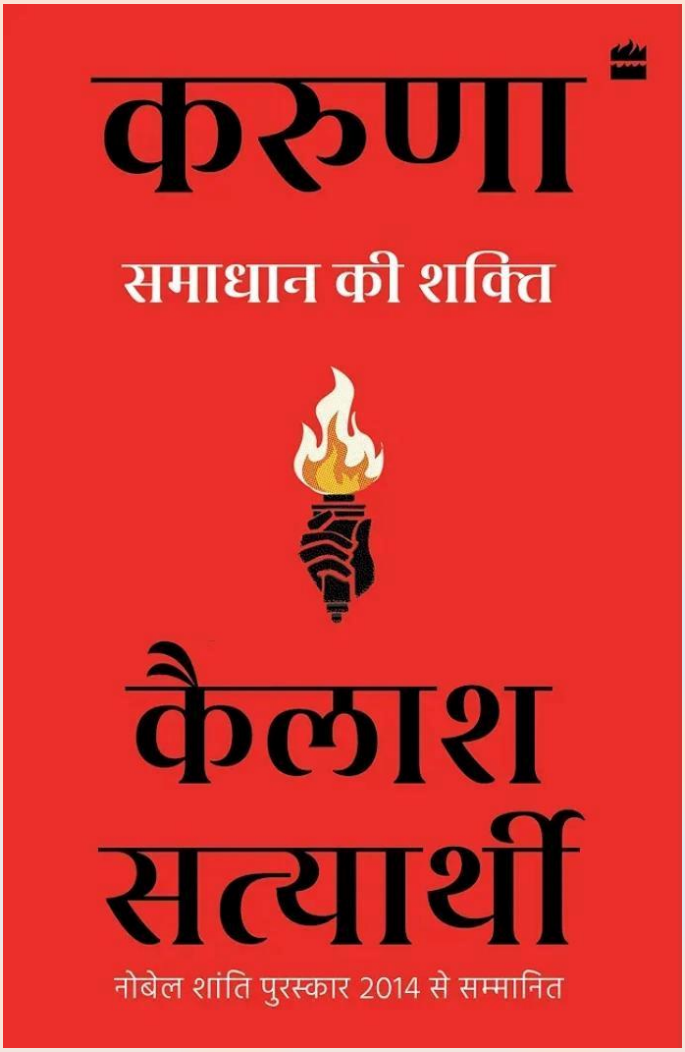

प्रकाशक

Harper Hindi
Harper Colin's ka imprint.
लेखक कैलाश सत्यार्थी
अनुवादक आशुतोष गर्ग
कीमत 399 रुपये
पृष्ठ 220

लेखक-परिचय

कैलाश सत्यार्थी को 2014 में नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। उन्होंने अपने जीवन के पाँच से अधिक दशक दुनिया-भर में हाशिये पर पड़े बच्चों और समुदायों के अधिकारों और गरिमा की रक्षा के लिए समर्पित किए हैं। उनका विश्वास है कि करुणा, एक न्याय, समानता, शांति और स्थिरता पर आधारित संसार का निर्माण करने वाली सबसे बड़ी शक्ति है तथा लोगों, संस्थाओं और समाज के सोचने एवं कार्य करने की शैली भी करुणा से ही तय होनी चाहिए।

आज दुनिया जिस मोड़ पर खड़ी है, वहाँ सबसे बड़ा संकट शायद संसाधनों का नहीं, करुणा का है। विज्ञान ने मनुष्य को अभूतपूर्व शक्ति दी है, तकनीक ने दूरियों को समाप्त कर दिया है और संचार ने पूरी दुनिया को एक-दूसरे की हथेली पर ला दिया है, लेकिन इसके बावजूद मनुष्य के भीतर मनुष्य के लिए जगह लगातार सिकुड़ती दिखाई दे रही है। हिंसा, असमानता, युद्ध, घृणा, शोषण और उदासीनता के बीच एक प्रश्न बार-बार सामने आता है—क्या आधुनिक सभ्यता ने विकास तो कर लिया, लेकिन करुणा खो दी?

इसी प्रश्न के बीच नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित कैलाश सत्यार्थी की पुस्तक 'करुणा: समाधान की शक्ति' एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप के रूप में सामने आती है।

पाँच दशकों से अधिक समय से श्री सत्यार्थी ने दुनिया के उन करोड़ों लोगों, विशेषकर बच्चों और वंचित समुदायों के अधिकारों और गरिमा के लिए

संघर्ष किया है, जिनकी आवाज अक्सर सत्ता, बाजार और व्यवस्था के शोर में दब जाती है। उनका जीवन इस बात का उदाहरण है कि करुणा यदि विचार से निकलकर कर्म बन जाए तो वह सामाजिक परिवर्तन की शक्ति बन सकती है।

आज दुनिया में युद्ध के लिए जितने संसाधन जुटाए जा रहे हैं, शायद उतने ही संसाधनों की आवश्यकता शांति के लिए भी है। हथियारों के बाजार का विस्तार हो रहा है, लेकिन मानवता के भीतर भरोसे का बाजार सिकुड़ रहा है। आर्थिक विकास के आँकड़े बढ़ रहे हैं, लेकिन उसी दुनिया में करोड़ों लोग अभी भी गरीबी, शोषण, बाल श्रम, भेदभाव और असमान अवसरों से जूझ रहे हैं।

कैलाश सत्यार्थी की 'करुणा: समाधान की शक्ति' केवल एक पुस्तक नहीं, बल्कि हिंसा, असमानता और संवेदनहीनता से जूझती दुनिया के सामने मानवता के पुनर्जागरण का आह्वान है। ऐसे समय में 'करुणा' शब्द को केवल भावुकता के दायरे में सीमित कर देना उसके वास्तविक अर्थ को छोटा करना होगा।

करुणा कमजोरी नहीं है। करुणा निष्क्रियता नहीं है। करुणा अन्याय को देखकर आँखें बंद कर लेना भी नहीं है।

करुणा का अर्थ है—दूसरे के दर्द को समझना, उसके सम्मान को स्वीकार करना और उसके दर्द को कम करने के लिए अपने हिस्से का दायित्व निभाना।

भारत की सभ्यता में 'करुणा' कोई नया विचार नहीं है। हमारे ऋषि-मुनियों ने हजारों वर्षों पहले मानव जीवन में दया, सह-अस्तित्व, सेवा और सर्वकल्याण को केंद्रीय मूल्य माना। लेकिन विडंबना यह है कि जिस सभ्यता ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का संदेश दिया, उसी आधुनिक दुनिया में आज मनुष्य जाति, धर्म, भाषा, भूगोल, विचार और आर्थिक हैसियत की दीवारों में बंटती जा रही है।

इसलिए आज जरूरत केवल 'करुणा' को याद करने की नहीं, उसे पुनः सार्वजनिक जीवन का हिस्सा बनाने की है।

राजनीति में 'करुणा' हो, तो नीतियों के केंद्र में आँकड़ों से पहले इंसान दिखाई देगा।

अर्थव्यवस्था में करुणा हो, तो विकास का अर्थ केवल लाभ नहीं, बल्कि अवसरों का न्यायपूर्ण वितरण होगा।

शिक्षा में करुणा हो, तो बच्चे केवल नौकरी के लिए नहीं, बेहतर इंसान बनने के लिए तैयार होंगे।

मीडिया में करुणा हो, तो खबर केवल सनसनी नहीं, समाज की संवेदना की आवाज बनेगी।

और यदि व्यक्तिगत जीवन में 'करुणा' समाहित हो, तो रिश्ते सुविधा के लिए नहीं, 'करुणा' पर टिकेंगे।

यही वह बिंदु है जहाँ 'करुणा: समाधान की शक्ति' एक पुस्तक से आगे बढ़कर एक सामाजिक विचार बन जाती है।

आज मानवता को किसी एक देश या किसी एक संस्था की नहीं, बल्कि 'करुणा' वैश्विक चेतना की आवश्यकता है। 'करुणा' का वैश्वीकरण केवल एक सुंदर वाक्य नहीं, बल्कि मौजूदा समय की प्रबल आवश्यकता है।

हमने वैश्वीकरण के नाम पर बाजारों को जोड़ा, पूंजी को जोड़ा, तकनीक को जोड़ा और सूचनाओं को जोड़ा। अब वक्त आ गया है कि दिलों को जोड़ा जाए। क्योंकि एक ऐसी दुनिया, जहाँ सूचनाएँ तेजी से यात्रा करती हों, लेकिन 'करुणा' नहीं, अंततः इंसान भीतर से खोखला हो जाता है।

आज 'करुणा' शायद समाप्त नहीं हुई है, वह हमारी प्राथमिकताओं के आगे सबसे नीचे दब गई है। कहीं वह राजनीतिक शोर में खो गई है, कहीं बाजार की प्रतिस्पर्धा में, कहीं सामाजिक विभाजन में और कहीं हमारी व्यक्तिगत व्यस्तताओं में। जरूरत उसे खोजने की नहीं, जगाने की है।

श्री कैलाश सत्यार्थी का जीवन इसी जागरण का उदाहरण है। उन्होंने पीड़ितों को केवल सहानुभूति

नहीं दी; उनके अधिकारों के लिए संघर्ष किया। उन्होंने वंचितों को केवल सांत्वना नहीं दी, उन्हें गरिमा के साथ जीने का अधिकार दिलाने की लड़ाई लड़ी। यही अंतर 'करुणा' को भावना से आगे ले जाकर सामाजिक परिवर्तन की शक्ति बनाता है। इसलिए 'करुणा: समाधान की शक्ति' का महत्वकेवल इसके लेखक की वैश्विक प्रतिष्ठा में नहीं है। इसका महत्व इस बात में है कि यह ऐसे समय में सामने आई है जब दुनिया को अपने विकास के मॉडल, अपनी प्राथमिकताओं और अपने मानवीय मूल्यों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

आज प्रश्न यह नहीं कि हमारे पास कितने शक्तिशाली हथियार हैं। प्रश्न यह है कि क्या हमारे पास इतना मानवीय विवेक है कि हथियारों के इस्तेमाल की आवश्यकता ही न पड़े?

प्रश्न यह नहीं कि हम कितनी ऊँची इमारतें बना सकते हैं। प्रश्न यह है कि उन इमारतों की छाया में रहने वाले अंतिम व्यक्ति के जीवन में कितनी रोशनी पहुंची।

और प्रश्न यह भी नहीं कि हमने दुनिया को कितना बदल दिया। असली प्रश्न यह है कि क्या हमने स्वयं को इतना बदला कि किसी दूसरे के दर्द को अपना दर्द समझ सकें?

'करुणा' का यही असली संदेश है

आज दुनिया को किसी नए नारे, से अधिक एक नए मानवीय संस्कार की आवश्यकता है। यदि 'करुणा' व्यक्ति से परिवार तक, परिवार से समाज तक और समाज से राष्ट्र तथा राष्ट्र से पूरी दुनिया तक पहुंच सके, तो यह केवल सामाजिक वातावरण को नहीं बदलेगी, बल्कि संघर्षों के समाधान में हमारी सोच को भी बदल सकती है।

और शायद यही इस पुस्तक की सबसे बड़ी पुकार है—

चन्द्र कुमार श्रीवास्तव

जीवन सार

मन की शांति ही सच्ची संपदा

जगदीश गौतम

आज मनुष्य के पास सुविधाएँ बढ़ी हैं, लेकिन शांति घटती जा रही है। तकनीक ने दुनिया को हमारे हाथ में ला दिया है, फिर भी हम अपने ही मन से दूर होते जा रहे हैं। इच्छाएँ बढ़ती जा रही हैं और संतोष कम होता जा रहा है। यही आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी विडंबना है।

हम अक्सर बीते हुए कल के पछतावे और आने वाले कल की चिंता में आज को खो देते हैं। जबकि जीवन वास्तव में इसी क्षण में मौजूद है। जो व्यक्ति वर्तमान को स्वीकार करना सीख लेता है, वह कठिन परिस्थितियों में भी संतुलित रह सकता है। सफलता केवल धन, पद या प्रतिष्ठा का नाम नहीं है। यदि मन अशांत है, रिश्तों में अपनापन नहीं है और भीतर असंतोष भरा है, तो बाहरी उपलब्धियां भी अधूरी लगती हैं। सच्ची समृद्धि उस समय महसूस होती है जब मन संतुष्ट हो और अंतरात्मा पर अनावश्यक बोझ न हो।

जीवन की वास्तविक सुंदरता अधिक पाने में नहीं, बल्कि जो मिला है उसे प्रेम, संतोष और कृतज्ञता के साथ

विकास की तेज चाल; आम आदमी की धीमी चाल

जगदीश गौतम



आजकल देश बहुत तेज़ी से विकास कर रहा है। इतनी तेज़ी से कि आम आदमी को समझ ही नहीं आ रहा कि विकास कहाँ जा रहा है और वह खुद कहाँ जा रहा है। सरकार कहती है कि देश आगे बढ़ रहा है, विपक्ष कहता है कि देश पीछे जा रहा है और जनता बीच में खड़ी होकर सोच रही है— **"भाई, पहले यह तो बता दो कि जाना किस दिशा में है?"**

मीडिया ने भी तरक्की की है। पहले खबरें खोजी जाती थीं, अब खबरें पैदा की जाती हैं। पहले पत्रकार सवाल पूछता था, अब सवाल पूछने से पहले यह देखा जाता है कि सवाल किसे पसंद आएगा। स्क्रीन पर दस लोग बैठे होते हैं और दसों एक साथ बोलते हैं। दर्शक बेचारा टीवी का वॉल्यूम कम करता है, लेकिन बहस की आवाज उसके घर के बाहर तक पहुँच जाती है।

सोशल मीडिया ने तो लोकतंत्र को और मजबूत कर दिया है। अब हर नागरिक के हाथ में मोबाइल है और हर मोबाइल में एक छोटा-सा संपादक, विश्लेषक और विशेषज्ञ बैठा है। किसी को अर्थव्यवस्था की चिंता है, किसी को विदेश नीति की, किसी को क्रिकेट की और कुछ लोग इन तीनों विषयों पर एक साथ विशेषज्ञ हैं।

फिर आता है चुनाव का मौसम। नेता जनता के दरवाजे पर आते हैं। इतने विनम्र होकर कि लगता है जैसे पड़ोसी के यहाँ शादी में निमंत्रण देने आए हों। हाथ जोड़ते हैं, पैर छूते हैं और कहते हैं— "आपका आशीर्वाद चाहिए।" जनता भी मुस्कुराकर कहती है— **"पिछली बार भी दिया था।"** नेता तुरंत जवाब देते हैं— **"इस बार थोड़ा ज्यादा चाहिए।"**

चुनाव खत्म होते ही जनता फिर जनता बन जाती है और नेता फिर नेता। जो सड़क चुनाव से पहले बन रही थी, वह चुनाव के बाद मरम्मत की प्रतीक्षा करने लगती है। जो वादा मंच से आसमान तक पहुँच गया था, वह फाइलों के बीच कहीं जमीन के नीचे दब जाता है।

आम आदमी की जिंदगी भी कम मजेदार नहीं। सुबह बिजली का बिल, दोपहर में पेट्रोल का भाव, शाम को बच्चों की फीस और रात को मोबाइल पर संदेश— **"आपके खाते में पर्याप्त राशि नहीं है।"** आदमी सोचता है कि कम से कम नींद तो मुफ्त है। तभी मोबाइल पर बैंक का मैसेज आता है— **"लोन की आसान सुविधा उपलब्ध है।"**

हम सचमुच बहुत आगे बढ़ गए हैं। अब समस्या यह नहीं है कि समस्याएँ खत्म क्यों नहीं होतीं; असली समस्या यह है कि नई समस्या पुरानी समस्या को आराम करने का मौका ही नहीं देती। फिर भी आम आदमी मुस्कुराता है। शायद इसलिए कि उसके पास रोने के लिए भी समय नहीं है। वह सुबह उठता है, काम पर जाता है, लौटकर टीवी देखता है, बहस सुनता है और अंत में मोबाइल पर लिखता है— "सब ठीक हो जाएगा।" और यही हमारी सबसे बड़ी राष्ट्रीय उपलब्धि है—

हम उम्मीद में इतने आत्मनिर्भर हो चुके हैं कि उम्मीद भी अब हमसे उधार लेकर चलती है।

RNI NO.: UPHIN/2016/68336

हमारी वेबसाइट देखें
www.mediamap.co.in

जुड़िए एक ऐसे मंच से जो रखता है जनता की बात

भारत की अर्थव्यवस्था कहां जा रही है?





गंभीर विश्लेषण, तथ्यों के साथ

शिक्षा और समाज नई चुनौतियां





समावेशी विकास ही सही दिशा

लोकतंत्र, संविधान और नागरिक अधिकार





जन सरोकारों पर बेबाक चर्चा

मानवता और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व





एक बेहतर, शांतिपूर्ण कल के लिए

हमारा YouTube चैनल देखें
Media Map Network

SUBSCRIBE

सोचें
देखें
समझें
साझा करें



जनसंवाद 7 : खानपान पर रोक क्यों? Ep-124
3 views • 4 hours ago



जन संवाद 6 : नेता हो या गुणाह, दोथी से क्यों डरना? Ep-123
4 views • 4 hours ago



विविध 15 : जन को भी छह महीने की सजा : Ep-122
27 views • 21 hours ago



विविध-14 : कंपनी की तानाशाही - आपके प्रोडक्ट को ट्रायल बना रहे हैं! Ep-121
6 views • 23 hours ago

आर्थिक सहयोग की अपील

उदार लोकतंत्र और गैर-सांप्रदायिक विचार के दर्शन से जुड़ा, मीडिया मैप समाचार नेटवर्क एक गैर-व्यावसायिक संगठन है। हम आप जैसे गंभीर और समझदार पाठकों के सहयोग से स्वतंत्र, निष्पक्ष और जनोन्मुख पत्रकारिता को आगे बढ़ाना चाहते हैं।

आपका सहयोग हमारे इस प्रयास को निरंतर और सशक्त बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

स्वतंत्र पत्रकारिता | जन सरोकार | समावेशी समाज | रचनात्मक विचार | बेहतर कल के लिए

"स्वतंत्र मीडिया, सशक्त समाज"

आइए, सकारात्मक बदलाव की इस पहल से जुड़ें।

SBI
MEDIA MAP
SCAN & PAY

UPI ID: 9810385757@sbi

- State Bank of India
- Account No. 43812481024
- IFSC : SBIN0005226

आपका छोटा सहयोग बड़ा बदलाव ला सकता है

www.mediamap.co.in | Media Map Network

सत्य, संवाद और समाधान के साथ

Your Home in the

Himalayan Paradise

SCHOLARS DESTINATION

GUEST HOUSE

MUKTESHWAR | UTTARAKHAND

A Peaceful Retreat for

Scholars, Researchers, Thinkers & Travellers

- Breathtaking Himalayan Views
- Free Wi-Fi
- Comfortable Accommodation
- Quiet Spaces for Study & Work
- Home-cooked Delicious Food
- Easy Access & Safe Parking



Comfortable Bedrooms



Spacious Balcony

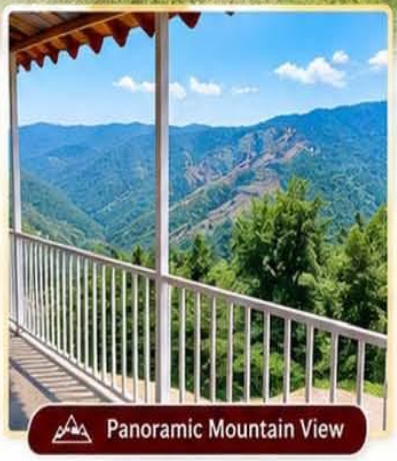

Panoramic Mountain View



Clean & Hygienic Bathrooms

BOOK YOUR STAY TODAY

9910322682

230 GEHNA, MUKTESHWAR
UTTARAKHAND - 263031

Peace | Nature | Inspiration

Come for the View... Stay for the Peace!